ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 14 मई 2017

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 14 मई 2017 से 20 मई 2017

ज्येष्ठ कृ. – 03 ● वि० सं०–2074 ● वर्ष 58, अंक 71, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 193 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,117 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

गेल डी.ए.वी. दिब्यापुर (औरैया) में हुआ 21 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन

गेल डी. ए. वी दिबियापुर औरैया में विद्यालय के गौरवमय 20 वर्ष पूर्ण होने एवं महात्मा हंसराज जयन्ती के उपलक्ष्य में 21 कुण्डीय वैदिक यज्ञ का आयोजन किया गया। इस पावन यज्ञ का शुभारम्भ श्री एम. एल. सेखरी (उपप्रधान) डी ए वी प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली, श्री आर. के. सेठी (कोषाध्यक्ष) डी.ए.वी. प्रबन्धकर्तृ समिति, नई दिल्ली, श्री एस के शर्मा (मंत्री), आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, एवं निदेशक, (प्रकाशन) डी. ए. वी. प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली, श्री एम. बी. गोहिल, कार्यकारी निदेशक, गेल (इण्डिया) लिमिटेड व अध्यक्ष स्थानीय प्रबन्धकर्त्री समिति, (गेल डी. ए. वी पब्लिक स्कूल), श्री एम. आर. मेश्राम (कार्य कारी निदेशक), डॉ. छवि कृष्ण आर्य (वैदिक प्रवक्ता) नई दिल्ली तथा यज्ञ के ब्रह्मा श्री प्रमोद कुमार व प्रधानाचार्य श्री आनन्द स्वरुप सारस्वत द्वारा दीप प्रज्वलन करके किया गया। चारों ओर ओ३म् के ध्वज से सुसज्जित प्रांगण में आस्था व भक्ति की दिव्य धारा प्रवाहित हो गई। सभी ने यज्ञ में पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के साथ आहुतियाँ डालकर सर्वमंगल हेतु कामना की। विद्यालय का प्रांगण यज्ञ की गमक से सुगन्धित हो गया। एक सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह हो गया।

श्री एस. के शर्मा जी ने एक समाज सुधारक, महान् शिक्षाविद्, आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का देश के प्रति योगदान एवं महात्मा हंसराज की त्याग भावना पर प्रकाश डालते हुए यज्ञ महिमा को व्यक्त किया।

डॉ. छवि कृष्ण आर्य (वैदिक प्रवक्ता) ने जीवन मूल्यों पर आधारित व्यक्तित्व विकास में माता–पिता की भूमिका पर प्रेरणात्मक व्याख्यान दिया। उन्होंने अपने सम्बोधन में माना, पिता तथा आचार्य के द्वारा बच्चों को संस्कारित करने और उनमें जीवन मूल्य के अंकुर कैसे प्रस्फुटित हों, इस विषय पर प्रकाश डाला।

प्रधानाचार्य, श्री आनन्द स्वरुप सारस्वत जी, ने सभी आगन्तुकों का आभार व्यक्त किया। डी. ए. वी गान तथा भक्ति पूर्ण भजनों से सारा वातावरण भक्तिमय हो गया। श्री एम. एल. सेखरी (उपप्रधान) द्वारा सभी यजमानों, विद्यार्थियों पर पुष्पवर्षा कर आशीर्वाद प्रदान किया गया।

डिस्लेक्सिया का पूर्ण प्रबन्धन संभव है

डी.ए.वी. नंदिनी में सम्पन्न हुई EEDP कार्यशाला

डी.ए.वी. इस्पात पब्लिक स्कूल, नंदिनी माइंस, सदा से ही नई योजनाओं और कार्यक्रमों में अग्रसर रहा है। विद्यालय के प्राचार्य श्री राजशेखर पालीवाल के मार्गदर्शन में विद्यालय नए प्रयोगों और नई ऊँचाईयों की ओर बढ़ता रहा है। इसी क्रम में एकदिवसीय EEDP कार्यशाला का आयोजन किया गया। EEDP का अर्थ है Early Education Development Programme. अर्थात् 03–08 वर्ष के बच्चों के विकास और शिक्षण संबंधी कार्यक्रम। विद्यालय की शिक्षिकाओं, भुवनेश्वरी जायसवाल और बिन्दु स्टालिन, द्वारा तैयार किए गए इस पावर प्वाइंट प्रेजेंटेशन में यह बताया गया कि जैसे ही 03 वर्ष का बच्चा नर्सरी कक्षा में प्रवेश लेता है और वह कक्षा दूसरी तक पहुँचता है, इस बीच उसके अंदर विभिन्न विकास की अवस्थाएँ आती हैं।

उसमें प्रमुख हैं– शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास और भावनात्मक विकास। विकास की इन प्रकियाओं को प्रभावित करने वाले सही विकास के महत्व और एक बच्चे के उचित विकास में शिक्षिकों की भूमिका पर बात की गई। वर्तमान समय में बच्चों में पाई जाने वाली एक असामान्य अवस्था *डिस्लेक्सिया* के विषय में भी चर्चा हुई। बताया गया कि *डिस्लेक्सिया* कोई बीमारी नहीं है। अच्छी

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. ७

संपादक – पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह – रविवार, 14 मई 2017 से 20 मई 2017

त्रिविध पवित्रता

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पत्रृतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

ऋग् ९.७३.८

ऋषिः **पवित्रः आङ्गिरसः** । देवता **पवमानः सोमः** । छन्दः **जगती** ।

● **(ऋतस्य)** सत्य का, **(गोपाः)** रक्षक, **(सुक्रतुः)** शुभ प्रज्ञानों और शुभ कर्मों वाला (सोम प्रभु), **(दभाय न)** हिंसा या उपेक्षा किये जाने योग्य नहीं है।, **(सः)** वह, **(हृदि अन्तः)** हृदय के अंदर, **(त्री पवित्रा)** तीन पवित्रों को–विचार, वचन और कर्म की पवित्रताओं को, **(आ दधे)** स्थापित करता है।, **(विद्वान्)** विद्वान्, **(सः)** वह, **(विश्वा)** समस्त, **(भुवना)** भूतों को, **(अभि पश्यति)** देखता है, **(अजुष्टान्)** अप्रिय, **(अव्रतान्)** व्रत–हीनों को, **(कर्ते)** अंध कूप में, **(विध्यति)** धकेलता है।

● 'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अनृत का घर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म–समर्पण करे, उसे अपने हृदय–मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करे। यदि मानव जीवन में उसकी हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभक्रतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अतः 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तीन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता और कर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अतः वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र हैं, मन में वह पाप–चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद–शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अतः प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य से मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमशः वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी आँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक–चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुओं को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ–कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुर्वृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्धकूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें। ❑

वेद मंजरी स

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

आनन्द गायत्री कथा

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पिछले अंक में स्वामी जी ने कहा कि 'सविता' गायत्री का देवता है और गायत्री मन्त्र में चमकते हुए हीरे की तरह वर्तमान भी है। सविता भगवान की वह शक्ति है जो सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति करते जगाती है, आज्ञा देती है–'जाग ऐ मूर्छित प्रकृति! मेरे मानव–कल्याण के लिए जाग!' वह जन्म देने वाली शक्ति है, पालने वाली शक्ति है, नष्ट करने वाली शक्ति है। वह गर्भ में लाने वाली और गर्भ से मुक्ति दिलाने वाली ईश्वर की कृपा से पूर्ण शक्ति है। इस शक्ति के द्वारा परमात्मा मनुष्य को बराबर प्रेरणा करता है।

'सविता' के पश्चात् शब्द है 'वरेण्यम्'

––अब आगे

तुम्हारे कल्याण के लिए करता है। अभी दो वर्ष पूर्व ही हमारे देशबन्धु जी वायुयान में सवार होकर दिल्ली से कलकत्ते की ओर रवाना हुए। 'अखिल भारतीय पत्र समिति' की स्टैंडिग कमेटी का अधिवेशन हो (कानफरेंस) रहा था। इसमें उन्हें पहुँचना था। इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी के सुपुत्र और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रबंध–सम्पादक (मैनेजिंग एडीटर) श्री देवदास गांधी भी जाना चाहते थे किन्तु उन्हें सीट नहीं मिली। बड़ी दौड़धूप की उन्होंने, कई यात्रियों को जाकर कहा– 'बाबा! मुझे आवश्यक कार्यवश कलकत्ते पहुँचना है। तुम कल चले जाना, मुझे अपना स्थान दे दो!' किन्तु किसी ने इनकी बात न मानी। देवदास जी बहुत दुःखी हुए। उन लोगों के विषय में जिन्होंने सीट नहीं दी, मन–ही–मन सोचते– 'कैसे सहानुभूतिरहित मनुष्य हैं! मुझे इतना आवश्यक कार्य था वहाँ, ये लोग छोटी–सी प्रार्थना भी नहीं मान सकें।' किन्तु दूसरे दिन प्रातः ही कुछ अन्धकार में यह वायुयान जब कलकत्ता के पास पहुँचा तो आकाश में धुन्ध बहुत थी। नीचे उतरने का मार्ग उसको मिला नहीं। समुद्र के किनारे नारियल के वृक्षों का जंगल था। इन वृक्षों से जा टकराया वह। जहाज चकनाचूर हो गया! आग लग गई! कोई भी यात्री बचा नहीं। हमारे देशबन्धु का अन्त हो गया। यह हृदय–विदारक सूचना जब दिल्ली में पहुँची तो देवदास जी चौंक उठे। इसी वायुयान से वे भी जाने वाले थे। इसमें जाने के लिए उन्होंने दौड़धूप की थी। सीट न मिलने पर अपने भाग्य को कोसा था। किन्तु जब सम्भवतः उन्होंने सिर झुकाकर कहा– 'धन्यवाद है तेरा भगवन् कि मैं उस वायुयान में नहीं था।' हाँ मेरी माता! भगवान् बहुत दूर तक देखता है। हमारी क्या शक्ति कि इतनी दूर तक देख सकें और यही नहीं देख सकते तो फिर इस बात की चिन्ता क्यों करें कि वह क्या करता है और कब करता है?

एक और बात तुमको सुनाता हूँ– एक बार मेरे पिता जी बहुत रुग्ण हो गए। मुझे विदित हुआ तो मैं लाहौर से जलालपुर जट्टाँ की ओर चल पड़ा। गाड़ी में सवार होने से पूर्व अपने छोटे भाई लाला त्रिलोकचन्द को 'खारियाँ' में तार दे दिया कि पिता जी रुग्ण हैं और मैं वहाँ पहुँच रहा हूँ। लाला त्रिलोकचन्द 'खारियाँ' में वकालत करते थे। तार पहुँचा तो वे कचहरी में खड़े एक अभियोग (मुकद्दमे) के सम्बन्ध में वाद–विवाद कर रहे थे। तार को पढ़ते ही उन्होंने मुन्शी को कहा– 'अभी सवा तीन बजे हैं, साढ़े तीन बजे गुजरात के लिए लारी जाती है। लारीवाले को कहो कि मेरे लिए सीट रखे। मैं बहस समाप्त करके अभी आता हूँ।' किन्तु बहस हो गई कुछ लम्बी। साढ़े तीन बजे समाप्त नहीं हुई। बसवाले ने सूचना भेजी– 'समय हो गया।' लाला त्रिलोक चन्द ने कहा– 'थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आता हूँ।' लारीवाले ने कुछ समय तक और प्रतीक्षा की। पौने चार बज गए, किन्तु बहस फिर भी समाप्त नहीं हुई। दूसरे वकील ने कोई नई बात उपस्थित कर दी। उसका उत्तर देना आवश्यक था। लाला त्रिलोकचन्द ने लारीवाले के पास फिर सन्देश भेजा, परन्तु चार बजे भी छुटकारा नहीं मिला। चार बजे तक प्रतीक्षा करने के बाद लारीवाला यह कहकर चला गया कि अब और प्रतीक्षा नहीं की जा सकती, दूसरे यात्री तंग आ गए हैं। कोई साढ़े चार बजे के लगभग त्रिलोकचन्द जी को छुटकारा मिला। बाहर आकर देखा कि लारीवाला चला गया है तो बहुत क्रोध में आए और अपने भाग्य को कोसा– 'पिताजी रुग्ण हैं, मुझे जलालपुर पहुँचना है। अब पहुँचूं कैसे?' लारीवाले को कोसा– 'इसे मैंने कल्ह के मुकद्दमे में बचाया था। यह बदला दिया इसने? थोड़ी देर प्रतीक्षा भी न कर सका? कैसे रूखे लोग हैं। अब मैं क्या करूँ? कैसे पहुँचूं पिताजी के पास?'

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

बोलना सिखाया जिन्होंने अब उनसे ही बोलते नहीं

● देवनाराण भारद्वाज

"बोलना सिखाया जिन्होंने अब उनसे ही बोलते नहीं" शीर्षक मेंइंगित समस्या आज की ही नहीं, पुरातन काल से चली आ रही है। भले ही पहले अतिन्यून हो, अब अधिक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से पूर्ण प्रभावित होकर छलेसर के रईस ठाकुर मुकुन्दसिंह ने उनको आग्रह पूर्वक अपने गाँव में आमंत्रित किया।हाथी–घोड़ा–पालकी–सैनिक व विशाल जन–समूह के साथ उनका स्वागत किया। उनके प्रवास के लिए नवीन भवन बनवाया। विशेष यज्ञ रचाया। पण्डितों व प्रजाजन की वहाँ भीड़ लगी रहीं। इतने कोलाहल में भी ठाकुर मुकुन्दसिंह के पुत्र कुंवर चन्दनसिंह का मौन महर्षि को बहुत अखर रहा था। कारण कुछ भी हो, पिता–पुत्र की बोलचाल बन्द थी। ग्राम में कुंभ जैसा मेला और उसका शोर, फिर भी पिता–पुत्र में मनोमालिन्य बना रहे, महर्षि इस पीड़ा को सहन नहीं कर सके। इन दोनों के सम्मुख वे बोले और ऐसा बोले कि पिता ने निज पुत्र के लिए अपनी बाहें फैला दी तथा उसे अपनी गोदी में बैठा लिया और मन का मैल सदा–सदा के लिए धुल गया।

परमपिता परमात्मा अपने प्रतिनिधिपुत्र सन्तान रूप में भेजकर समाज में श्रेष्ठ वार्तालाप का वातावरण बनाते रहते हैं। जब यही तथाकथित सन्तान स्वार्थी हो जाती है, तो समाज में संवाद समाप्त होकर विवाद–परिवार की वायु बहकर सन्ताप उत्पन्न कर देती है।

विवाह संस्कार के कारण श्रीमती सहित एक उस नगर में जाने का अवसर मिला, जहाँ हम कभी 41 वर्ष पहले गए थे। श्रीमती जी अपनी दूरी की दादी से मिलना चाहती थीं और मुझे अपने समवयस्क मित्र से मिलने का आकर्षण था। मित्र मिले, वे उतने ही प्रतिष्ठित व लोकप्रिय मिले, जितने 'राजा साहब' सम्बोधन से जाने जाने वाले उनके पिता थे। जितनी अधिक उनकी भूमि–भवन–धन की सम्पदा थी, उतनी ही उनकी सुकीर्ति व मान्यता भी थी। उन्होंने सर्वत्र मुझको भ्रमण कराया और लेजाकर खड़ा कर दिया, अपने एक पुत्र के प्रतिष्ठान पर और लगे उससे मेरा परिचय कराने।

वह अच्छा खासा समझदार पुत्र न उनसे बोला और न मुझसे नमस्ते की। मित्र तो खड़े के खड़े रह गए। किन्तु मुझसे वहाँ रुका नहीं गया और मै उनका हाथ पकड़कर आगे आगे बढ़ा लाया। मार्ग में उन्होंने बताया कि इस पुत्र को मुझसे यह आपत्ति है कि पिता की इतनी मान–प्रतिष्ठा होते हुए भी मेरे लिए कुछ नहीं किया।

यह तो मेरी भेंट मित्र से हुई। अब श्रीमती जी की दूर की दादी की कहानी सुनिए। मिलने पहुंची तो उनको घर के बाहर एक टूटी–टाटी खाट पर पड़ा पाया। देखकर उठीं, इनको अपने हृदय से चिपटा लिया। दादी के स्वावलम्बी पुत्र का बाल–बच्चों वाला परिवार था, किन्तु दादी से कोई बोलता तक नहीं।

यह जो हमने दूर के नगर में जाकर देखा, वह हमारे नगर में आसपास भी घटता दिखाई देता रहता है। हम दो ऐसे बच्चों को जानते हैं। एक दूसरे ही वर्ष में चलने और बोलने लगा तथा दूसरे बच्चें ने इन दोनों कार्यों में कईं–कईं वर्ष लगा दिए। जब यह चलता–बोलता नहीं था, तो माता–पिता एवं परिजन सब व्याकुल रहते थे। उपचार–उपाय खोजते व चिन्तित बने रहते थे। जिन माता–पिता–अभिभावकों ने उन्हें बोलने में समर्थ बना दिया, बड़े होकर वही बच्चे अन्य सबसे तो बोलते हैं, पर अपनों से ही नहीं बोलते हैं, तो उनका हृदय टूट जाता है। इसका दूरगामी दुष्प्रभाव ऐसी सन्तानों पर पड़ने से कोई रोक नहीं सकता है। माता–पिता ही क्या उस परमेश प्रभु के साथ भी ऐसे लोगों का यही व्यवहार होता है, जो माता–पिता दोनों के रूप में जन्म देकर पालन–पोषण करता है। प्रभुदेव सविता अग्नि के समक्ष शान्त शीतल जलांजलि पूर्वक व्यक्ति मांग करता है–

वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।
(यजु. 30/1)

अर्थात्–हे वाणी के स्वामी परमेश्वर! आप हमारी वाणी को मधुर बना दीजिए।

जीभ तो मानव–पशु सबके पास है। पशुओं की जीभ तो सदा समान रहती है, किन्तु मनुष्यों की जीभ सदा स्वाद बदलती है। कभी कड़वी, कभी मीठी, कड़वी हुई तो मानो कटार हो गयी, दिल के आर–पार हो गई, अतः इसका कोमल व मधुर रहना ही ठीक है, प्रभु से यही मांग है। इसी क्रम में अभिभावकों की उत्कट कामना द्रष्टव्य है–

ओ३म् उप नः सूनवो गिरः शृणवन्तवमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः।। (साम. 1595)

अर्थात्हमारे पुत्रगण अनश्वर परमेश्वर की वाणी सुनें और हम लोगों को सुखी करें। परमेश प्रभु की वाणी वेद का कितना मधुर संदेश है–

ओ३म् उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनञ्जयो रणे रणे।।
(साम. 1382)

मन्त्र –भावार्थ देखिए

क्षण–क्षण सम्मुख रण आते हैं।
धन, जय प्रभु ही दिलवाते हैं।।

प्रभु हमको शक्ति विमल देते,
हम जिससे शत्रु मसल देते।
प्रभु ने जीवन धाम दिया है।
प्रभु ही इसको चमकाते है।।
जीवन्त प्राणधारी आओ, प्रभु से सम्पत्ति ले जाओ।
बैठो प्रभु से करो वार्ता, सन्मार्ग वही दिखलाते हैं।।
जिसने निज को उत्कृष्ट किया,
हर कष्ट सहनकर पुष्ट किया।
वे नर जीवन संग्रामों में,
प्रभु की सहाय पा जाते हैं।।
क्षण–क्षण सम्मुख रण आते हैं,
धन, जय प्रभु ही दिलवाते हैं।।

'सामश्रवा' के देवातिथि द्वारा रचित सामगीत में सन्देश निहित है कि जिस प्रभु से हम हर संग्राम में विजय और वैभव प्राप्त करने की कामना करते हैं, और वह हमें सुलभ भी हो जाता है। इस ऋद्धि–सिद्धि उपलब्धि के बाद अधिकांश व्यक्ति इसी में रम जाते हैं। इसकी ही बात करते रहते हैं। प्रभु से बात करने का उनके पास समय ही नहीं बचता है। मन्त्र का मृदुल आदेश है कि– इसे माँगने व मिल जाने के बाद भी प्रभु से बात करते रहो, स्तुति करके धन्यवाद देते व आशीर्वाद लेते रहें।

परमेश प्रभु की ही भाँति हमारे पितर जन भी हमें सब कुछ देते हैं। तन देते हैं, सुसंस्कृत मन देते हैं, यथासंभव धन देते हैं, विद्या और गुण देते हैं, फिर भी हम सर्वसमृद्ध करके चिर–विदा लेकर चले ही जाने वाले हैं, फिर हम उनसे बात न करें, तो इसे हमारा अधर्माचरण ही कहा जाएगा।

यहां पर हिन्दी के प्रसिद्ध रसिक कवि बिहारी जी का एक दोहा उद्धृत किया जा रहा है, जो इस प्रकार से दो अर्थ प्रस्तुत करता है कि एक ओर तो वे अपने आराध्य श्रीकृष्ण का तथा दूसरी आरे अपने वंश व पिता का स्मरण भी कर लेते हैं। लीजिये पढ़िये–

प्रगट भए द्विजराज–कुल, सुबस बसे ब्रज आठ। मेरे हरो कलेश सब, केशव के सबराइ।।

दोहे में प्रयुक्त 'द्विजराज' शब्द द्वि अर्थक है– एक चन्द्रमा व दूसरा ब्राह्मण। दोहे का एक अर्थ बनता है कि– केवल कृष्ण चन्द्रकुल में जन्म लेकर ब्रह्मभूमि में बस रहे हैं वे मेरे सभी कष्टों को दूर करें। दूसरे अर्थ में – वे अपने पिताश्री को आराध्यतुल्य स्मरण करते हुए कहते हैं, कि– मैं भी ब्राह्मण कुल भूषण ब्रजवासी हूँ मेरे जन्मदाता केशवराय मेरे कष्टों को दूर करें।

कभी–कभी ऐसा कुयोग भी आ जाता है, जब सन्तान से पितर वृद्धजन अपनी ओर से बोलना बन्द कर देते हैं, वह भी जरा से भ्रम के कारण।

एक माता के तीन पुत्रियाँ एवं एक पुत्र था। किशोरवस्था में पुत्र नहीं रहा। उनका बड़ा दामाद उनका मातृवत् सम्मान करने वाला है। एक बार अपना भोजन साथ लेकर वह दामाद के घर गयीं। सदैव की भाँति दामाद ने स्वागत अभिवादन किया और उनसे भोजन करने के लिए जोरदार आग्रह करे लगा। माता मना करती रहीं। दामाद के मुख से निकले शब्द– 'आपके कोई है नहीं, इसलिये मैं आपसे खाने के लिए कह रहा हूँ। कोई होता तो भला मैं क्यों कहता'?

उस माता के हृदय में यह शब्द ऐसे चुभ गए कि कई महीनों तक उस माता ने अपने दामाद से बोलचाल बंद रखी। दामाद को स्थिति का आभास हुआ। अनेक प्रकार से उसने बोलना चाहा, किन्तु माता का मुँह बंद का बंद ही रहा। माता ने यह स्थिति मुझे बताकर कुछ परामर्श चाहा, तो मैंने कवि रहीम के शब्दों को– **'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात'**

दोहरा दिया। तभी माताजी ने कहा कि अब तो वे मुझे अपने बच्चों के साथ तीर्थ यात्रा पर ले जाना चाहते हैं। ठीक ही है, सुखद अन्तराल में दुःखद बात विस्मृत होना असंभव नहीं है। धर्म के दश लक्षणों में 'क्षमा' विलक्षण है और सभी एक पक्षीय हैं, पर क्षमा द्विपक्षीय है। क्षमा मांगने वाला धर्म का पालन करता है और क्षमा करने वाला सधर्म का परिपालन करता है। बड़े लोग किसी भी कारण से बोलना बन्द करने के स्थान पर अपनी सकारात्मक सोच विकसित करके प्रकरण की नकारात्मकत्ा को तिरोहित करके, अपने छोटों को सन्मार्ग दिखाने का सत्प्रयास कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रकरण में घोर निराशा को घनघोर आशा में इन्ही माताजी के शब्दों ने बदल दिया। वे बोली कि– कुछ दिनों के लिए बाहर क्या चली गयी, पडौसी बच्चों ने छत पर कूद–फाँदकर सीमेंट उखाड़ दिया। जरा–सी वर्षा में छतें टपकने लगती हैं। प्रयोग में न आने से हस्तचालित नल ने पानी देना बन्द कर दिया और शौचालय में पानी नहीं। एक अकेले के लिए हज़ारों रुपये व्यय करके ठीक कराये, फिर चले जाएँ बाहर तीर्थ यात्रा पर। लौटकर आएँ तो वहीं 'ढाक के तीन पात' मैंने उससे कहा कि– यह सब अव्यवस्थाएँ इसीलिए हुई हैं कि आप दामाद का आमंत्रण स्वीकार कर

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

यक्ष–युधिष्ठिर संवाद

● पं. राम निवास 'गुणग्राहक'

यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा।

इन्द्रियार्थान् अनुभवन् बुद्धिमान् लोक पूजितः।
संमतः सर्वभूतानां
उच्छ्वसन् को न जीवति।।

(55)

हे युधिष्ठिर! संसार में ऐसा कौन पुरुष है, जो उत्तमोत्तम भोग भोगता हुआ, बलवान और सबका प्रिय होकर संसार में रहता है परन्तु वह जीता हुआ भी मरे के समान है। यक्ष के इस गम्भीर और जटिल प्रश्न को सुनकर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–

देवतातिथि भृत्यन्नं पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानां उच्छ्वसन्न स जीवति।।

(56)

हे यक्ष! जो पुरुष देवता अर्थात् विद्वान, अतिथि, भृत्य तथा पितर–माता–पिता आदि वृद्धों को बिना भोजन दिये स्वयं भोजन करता है और जो पञ्च यज्ञों का अनुष्ठान नहीं करता, वह चाहे कितना ही ऐश्वर्यवान हो, कितना ही बुद्धिमान हो, लोक दृष्टि से चाहे वह सबका प्रिय हो, लेकिन सच में वह जीता हुआ भी मृतक समान है।

सुधी पाठक! तनिक विचार करें, शास्त्र–मर्यादा का ध्यान रखते हुए अपने आचार–विचार और व्यवहार की जाँच–पड़ताल करें। मन और मस्तिष्क के कपाट खोलकर यक्ष के गम्भीर प्रश्न और युधिष्ठिर के सटीक उत्तर के आइने में स्वयं को खड़ा करके देखें कि कहीं हमारा जीवन सच में जीवन है या मृतक समान है। हमारी कठिनाई यह है कि हमें शास्त्र वचन की गम्भीरता का भाव ही नहीं है। हम बहुत उत्तम जीवन–निर्माण में हमारी चेतना को चुनौती देने वाले जीवन–मूल्यों को सहज भाव से पढ़कर निकल जाते हैं, मानों हम कोई उपन्यास पढ़ रहे हों। विद्वानों, अतिथियों, सेवकों तथा परिवार के वृद्ध माता–पिता, दादा–दादी आदि को भोजन दिए बिना उनसे पहले स्वयं खा लेना तथा पंच यज्ञ न करना कितना अमानवीय है, कितना अनुचित है। यह भी एक बार जान और समझ लेना चाहिए।

प्रथम विद्वान् के महत्व पर विचार करें। महाभारत के वैदिक भाष्यकार पं. आर्यमुनि जी देवता का अर्थ विद्वान करते हैं। विद्वान मानवता के मार्गदर्शक होने के कारण मानव जाति के मुकुट मणि माने जाते है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में खिलते हैं– 'सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।' मानव कहलाने वाले प्राणी के जीवन की सार्थकता विद्या–विज्ञान प्राप्त करके उसके अनुकूल आचरण करने में ही है। श्री कृष्ण जीवन की पवित्रता का साधन ज्ञान को ही मानते हैं। वे कहते हैं– '**नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमहि विद्यते।**' ज्ञान व विद्या के साक्षात् संवाहक होने के कारण विद्वान हमारे जीवन को अपने सत्योपदेश के द्वारा पवित्रता प्रदान करते है। ऋग्वेद में कहा है–'हे मनुष्यों! जैसे दिन वैसे विद्वान् जन और जैसे रात वैसे अविद्वान जन हैं।(5.1.4) इसके आगे लिखा है– ''विद्वानों का यही आवश्यक कर्म है, जो सब मनुष्यों को अविद्या और अधर्माचरण से अलग कर विद्वान् धार्मिक बना उनका दुःख बन्धन छुड़ाना निरन्तर करना चाहिए।'' (5.2.7.) ऐसे विद्वानों के प्रति हमारे कर्तव्यों की प्रेरणा करते हुए कहा है–''हे विद्वान्। जिससे आप सबके लिए विद्या देते हो इससे आपके साथ मित्रता करके आपके लिए बहुत धन और अन्न देकर निरन्तर सत्कार करें।'' (ऋ. 4.22.11)। वेद तो विद्वान् की भूमिका को सर्वोत्तम व अनुपम बताते हैं– 'जैसे विद्वानों से मनुष्यों के लिए सबसे उत्तम, उपमारहित यत्न किया जाता है, वैसे ही इनके सत्कार के लिए सब मनुष्य भी प्रयत्न किया करें'' (ऋ.1.61.3)। इतना ही नहीं वेद राजा के लिए कहता है– ''जो राजा सत्य के उपदेशक अपने प्रिय कारक विद्वानों की राजकृत्य में रक्षा करे, उसके पराजय करने का कोई भी समर्थ नहीं होवे'' (ऋ.4.17.19)।

विद्वानों की महत्ता व महिमा के न जाने कितने प्रेरक कथन वेद और वैदिक साहित्य में बिखरे पड़े है। सांख्यकर महर्षि कपिल का मानना है– **उपदेश्योपदेष्ट्रत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्ध परम्परा।**'' (3.79.81) अर्थात् जब उत्तम–उत्तम उपदेश होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेश और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। इससे सिद्ध है कि जिस परिवार, समाज व राष्ट्र में विद्वान् जनों का आना व उनके सत्योपदेशों का सुनना–मानना होता है, उनके धर्मार्थ काम व मोक्ष सिद्ध होते रहते हैं। जहाँ ऐसा नहीं होता वह परिवार, समाज व राष्ट्र अनेक प्रकार की अन्ध परम्पराओं व अन्धविश्वासो का शिकार होकर दुःख व दुर्गति के दलदल में डूबा रहता है। व्यवहार के धरातल का सच यह है कि जिसका समाज में जितना आदर–सम्मान होता है उसकी ही वृद्धि होती है तथा जिसका जितना तिरस्कार उपेक्षा व अनादर होता है उसका उतना की लोप होता चला जाता है। प्रत्येक सुधी–सुजन का यह व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य है कि वह सच्चे, सदाचारी व धर्मनिष्ठ सत्योपदेशक विद्वान् की सेवा, सत्कार, सम्मान और पूजा सच्चे हृदय से सदा करता रहे।

अतिथि की बात करें तो हमारे देश के जन सामान्य के मन–मस्तिष्क में भी 'अतिथि देवो भव' की भावना भरी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि जन सामान्य को अतिथि की परिभाषा बताकर अतिथि के साथ शास्त्रोक्त व्यवहार करना भी समझाया जाए। ऋग्वेद में आता है–'जो मनुष्य नित्य भ्रमण करते और प्राप्त हुए जनों को उपदेश कर और नहीं प्राप्त हुए जनों को भी प्राप्त होकर उपदेश देते तथा सबके हितैषी, बड़े विद्वान् और यथार्थवादी हैं, वे ही अतिथि होने योग्य है।' (5.1.1.)। अगले ही मंत्र में लिखा है–"जिससे अतिथि जन सब मनुष्यों के सत्य उपदेश से परम उपकार को करते हैं, इससे वे अन्न–पान, स्थान प्रियवचन और धन आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं।" आगे आता है–'गृहस्थों को चाहिए कि दूर स्थित भी उत्तम अतिथियों को उत्तम वाहनों पर बैठाकर उपदेश के लिए लायें और अन्न आदि से उनका सत्कार करें" (5.1.11) वैदिक संस्कृति में अतिथि का गौरव इतना ऊँचा है कि अतिथि के सेवा–सत्कार को 'अतिथि यज्ञ' कहा जाता है। ऋषि दयानन्द लिखते है–' धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात रहित, शान्त, सर्व हितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या की प्राप्ति होना अतिथि यज्ञ कहाता है"। अतिथियों के सम्बन्ध में वेद बड़ी ऊँची मर्यादा प्रकट करता है–"**इष्टं च वा एष पूर्तंच गृहणां अश्नाति यः पूर्वेऽतिथेः अश्नाति**" (अथर्व. 1.63.1) अर्थात् जो गृहस्थ अतिथि को भोजन कराने से पहले भोजन खा लेता है वह अपने इष्ट और पूर्त (शुभ संकल्पों व पुण्य कार्यों के फल) को खा जाता है, नष्ट कर डालता है। अतिथि के सम्बन्ध में इससे अधिक लिखना उचित नहीं लगता, सुधीपाठकों के लिए यह बहुत है।

वैदिक संस्कृति का निरालापन यह है कि इसमें मानवीय गुणों की सर्वोच्च पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। वेद के अतिरिक्त विश्व–साहित्य में सेवकों के भोजन आदि की व्यवस्था विद्वान् अतिथि और माता–पिता आदि पूज्य जनों के साथ हो ऐसा ऊँचा आदर्श कहीं मिल सकता है? मनुस्मृति में भी ऐसी ही श्रेष्ठ मर्यादा के दर्शन होते हैं। मनु महाराज लिखते हैं–

भुक्तवत्सु अथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुञ्जीयातां ततः पश्चात् अवशिष्टं तु दम्पति।। (3.116)

श्लोक में बड़े सरल शब्दों में आता है कि विद्वान् ब्राह्मणों, अपने माता–पिता आदि परिजनों और सेवकों को भोजन कराने के बाद जो बचे उस शेष भोजन को गृहपति (पति–पत्नी) खावे। जो अज्ञानी लोग मूर्खतावश महर्षि मनु को शूद्र–विरोधी कहकर मनुस्मृति जैसा मानवता वादी ग्रन्थ का अपमान करते–जलाते हैं वे इस मनु–मर्यादा को ध्यान से पढ़ें और अपनी भूल का सुधार कर लें। वैदिक आदर्शों के प्रति श्रद्धा रखने वाला गृहस्थ न तो अपने माता–पिता आदि की उपेक्षाकर सकता और न अपने सेवकों की। महात्मा विदुर कहते हैं–

एकःसम्पन्नं अश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
यो सं विभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरः नरः।।

अर्थात् जो अपने आश्रित–सेवकों को दिये बिना अकेला ही उत्तम भोजन–वस्त्रों का सेवन करता है, उससे बढ़कर क्रूर, निर्दयी कौन होगा? इनसे स्पष्ट है स्व सेवकों को खिलाये बिना खाना भी अमानवीय है। माता–पिता और दादा–दादी आदि पूज्य परिवारी जनों के बारे में तो सब सहज भाव से जानते है कि उन्हें खिलाकर खाना पुण्यकर्म है और उनसे पूर्व खाना पापकर्म है। यह जानते सब हैं, लेकिन इस पर व्यवहार करने वाले भाग्यशाली आज कम ही मिलेंगे। सब सौभाग्यों का सौभाग्य यही है कि अपने माता–पिता आदि पूज्य जनों को अपनी सेवा, सुश्रूषा और मधुर वचन व प्रियाचरण से सदैव सुखी व सन्तुष्ट रखें।

युधिष्ठिर के उत्तर में पञ्च यज्ञों का भी उल्लेख है (न निर्वपतिपञ्चानां) कि जो पाँच यज्ञों को नहीं करता–मैं मानता हूँ कि लेख का कलेवर कुछ बड़ा हो रहा है, जिसे कुछ मान्य सम्पादक व पाठक ठीक नहीं मानते। उनसे मेरा निवेदन है कि विषय की माँग हो तो बड़ा लेख अनुचित नहीं, हाँ लेख बोझिल नहीं होना चाहिए। मेरा स्वभाव है कि मैं लेखन व प्रवचन विषय से नहीं भटकता और न ही विषय के मर्म को खोलने में कञ्जूसी करता हूँ। मेरा प्रयास रहता है कि जो विषय लिखने–बोलने के लिए उठाया है, उसका इतना ज्ञान पाठकों–श्रोताओं तक अवश्य पहुँचा दिया जाए, जिससे वे उसे अपने जीवन का अंग बनाने के लिए लालायित हो उठें। उन्हें लगे कि ऐसा तो हमें करना ही चाहिए। इसी में लेखन–प्रवचन की और पढ़ने–सुनने की सार्थकता है। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि सम्पादक और पाठक इस बड़े लेख को भी मेरी इसी भावना के अनुसार पढ़ने–समझने का प्रयास करेंगे।

महर्षि दयानन्द द्वारा सब आर्यों के लिए जिन पाँच महायज्ञों को नित्य कर्म के रूप में करणीय कर्त्तव्य बताया है, महाभारत कार के शब्दों में उन पाँच महायज्ञों के किये बिना भोजन करने वाला मृतक समान है। आर्य बन्धुओं! हमें ऋषियों के शब्दों में मृतक समान कहा जाए, क्या यह हमें स्वीकार है? जिन्हें यह स्वीकार है, उनके लिये तो यह लेख ही नहीं, हाँ जो जीते जी मरा हुआ कहलवाना नहीं चाहते, उन्हें हम संक्षेप में पाँच यज्ञों का महत्व समझाना चाहते है। वे सबसे पहले तो यह समझ लें–

'**कर्त्तव्यमेवहि कर्त्तव्यं, प्राणः कण्ठ गतैरपि।**

अकर्त्तव्यमेव न कर्त्तव्यं, प्राणः कण्ठ गतैरपि।।

अर्थात् करणीय कर्त्तव्यों का ही पालन

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

☞ पृष्ठ 04 का शेष

करना चाहिए, चाहे प्राण कण्ठ तक आ जाएँ, अकरणीय (न करने योग्य) कर्मों को कभी नहीं करना चाहिए, चाहे प्राण कण्ठ तक आ जाएँ। सीधा सा अर्थ है करने योग्य कर्त्तव्य कर्मों को अवश्य करें तथा न करने योग्य कर्मों को कभी न करें चाहे प्राणों का संकट भी खड़ा हो जाए! हम आर्य कहलाने वाले तनिक विचार तो करें कि महर्षि मनु से लेकर महर्षि दयानन्द तक सब ऋषि एक स्वर से जिन पंच महायज्ञों को आर्यों के दैनिक कर्म बताते है, उनका निर्वहन (पालन) किए बिना हम स्वयं को आर्य कहकर ऋषि–प्रजा का अपमान तो नहीं कर रहे? 'आर्य' गुण वाचक संज्ञा है, आर्योचित कर्त्तव्यों का पालन करके, आर्योचित गुण, कर्म स्वभाव के धनी ही आर्य कहाने के अधिकारी है; शेष नही। इन पाँच महायज्ञों मे से विद्वान्–अतिथि तथा माता–पिता आदि की सेवा वाले पितृयज्ञ व अतिथियज्ञ की चर्चा तो आ ही चुकी है। अपने आश्रित भृत्यों (सेवकों) के भोजन–आच्छादन की गणना बलिवैश्व देवयज्ञ में कर लें तो ब्रह्मयज्ञ व देव यज्ञ ही शेष रह जाते हैं। पाठकों की जानकारी के लिए बता दूँ कि यह श्लोक (**देवतातिथि भृत्यान्नं–– न स जीवति**) मनु स्मृति के तृतीय अध्याय में भी आता है और वहाँ इसे पंच महायज्ञों के लिए ही पढ़ा गया है। ब्रह्मयज्ञ संध्या व स्वाध्याय दोनों का वाचक है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पञ्च महायज्ञ विषय में ऋषि लिखते है–'' **ब्रह्मयज्ञस्यायं प्रकारः– साङ्गान्नं वेदादिशास्त्राणां सम्यक् अध्ययन मध्यापनं संध्योपासनं च सर्वै कर्त्तव्यम्**''। योग दर्शन के व्यास भाष्य में आता है–' **स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते**'। अर्थात् स्वाध्याय और योगसाधना के द्वारा परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित होता है।

मेरा अपना साक्षात् अनुभव है आपने सुप्त सद्गुणों का व्यावहारिक विकास करने तथा दोषों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और इनसे उत्पन्न होने वाले दुःखों के विनाश की प्रबल इच्छा रखने वालों के लिए वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय और संध्योपासना ही एक मात्र साधन है! ऋग्वेद का मंत्र कहता है–'मनुष्य परमात्मा की उपासना व आज्ञानुष्ठान के बिना व्यवहार (लौकिक) व परमार्थिक (पारलौकिक) सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते'' (1.67.2)। अन्यत्र कहा है– 'परमेश्वर की उपासना के बिना किसी मनुष्य को विज्ञान व पवित्रता होना सम्भव नहीं हो सकता, इससे सब मनुष्यों को एक परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए' (1.50.6)! एक मन्त्र का आशय देखिये– 'हे मनुष्यों! जिसके बिना न विद्या न सुख प्राप्त होता है, जो विद्वानों का संग, योगाभ्यास और धर्माचरण से प्राप्त होता है, उसी जगदीश्वर की सदा उपासना करो'' (ऋ.7.11.1)। ऐसे सैंकड़ों–सहस्रों प्रेरक मंत्रार्थ दिए जा सकते हैं जो ब्रह्मयज्ञ की महत्ता व अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हैं।

अब देव यज्ञ की उपयोगिता भी वेद मंत्रों के आलोक में देखिए– ''**प्रयज्ञमन्मा वृजनं तिराते**'' (ऋ.7.61.4) यज्ञशील पुरुष सब प्राणों–विपत्तियों से तर जाएँ। वेद कहता है–''हे गृहस्थियों! जिससे वायु, जल और औषधि पवित्र होती हैं, उस यज्ञ का अनुष्ठान करो।'' (ऋ.7.43.2) और देखें– 'मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि आग में जितने सुगन्धि युक्त पदार्थ होमे जाते हैं, सब पवन के साथ आकाश में जा, मेघमण्डल के जल को शोध और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके अनन्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करने हारे होते हैं।'' (ऋ.1.93.7) । ऋषि याज्ञवल्क्य लिखतें हैं– '**सर्वस्मात् पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति**'' (शत. 2.3.16) अर्थात् जो विद्वान् **अग्निहोत्र जुहोति**'' (शत.2.3.16) अर्थात् जो विद्वान् अग्निहोत्र (यज्ञ करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। पाप–मुक्ति की बात मनु इस प्रकार बताते है– 'नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते' (3.71) अर्थात् प्रतिदिन घर में होने वाली (चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली व जल –स्थान आदि) अनचाही हिंसा के पाप से बच जाते हे। यज्ञ की महिमा व उपयोगिता के विषय में लिखने लगें तो एक वृहत्काय ग्रन्थ तैयार हो जाएगा। देवयज्ञ एक ऐसा कर्म है जिसे याज्ञवल्क्य श्रेष्ठतम् घोषित करते हैं। रोग कृमि व हानिकारक कीटों के अतिरिक्त प्राणी मात्र का पूर्ण हित व सुख साधन यज्ञ से होता है। यज्ञ शेष खाने वाले को श्री कृष्ण भी 'मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः (3.13) अर्थात् सब पापों से मुक्त मानते हैं। साथ ही कृष्ण कहते है– ''नायं लोकोऽस्ति अपज्ञस्य कुतोऽन्य कुरुसत्तम''(4.31) अर्थात् यज्ञ न करने वाले का तो यह लोक ही सुखी नहीं होता परलोक की तो बात ही क्या? यज्ञ करने वाला इस जन्म में सब प्रकार के सुख–ऐश्वर्य भोगता हुआ लोक–सम्मान का पात्र बनकर भूलवश पारिवारिक क्रियाओं में होने वाले पापों से छूटकर लोकहित के कारण धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष तक का अधिकारी बनता है। यज्ञ न करने वाले को ऋषि अभागा, पापी मानते हुए दोनों लोकों से पतित घोषित करते हैं।

विवेकशील पाठक! मेरा हृदय कहता है कि मैं संसार के सब लोगों के हृदयों में यह बात बैठा दूँ कि ज्ञान–विज्ञान की सब बातें, सब विद्या और सत्योपदेश केवल उन भाग्यशाली व्यक्तियों के लिए है, जो जीवन का सच्चा सुख और आनन्द पाने के लिए अपने जीवन के दोषों दुर्गुणों व दुर्व्यसनों को त्यागने के लिए तत्पर रहते हैं। हर विवेकशील व्यक्ति अपने हृदय में झाँककर देखे, आत्म चिन्तन करे और अपने आगे–पीछे के व्यवहार का विश्लेषण करें तो उसे स्पष्ट आभास हो जाएगा कि वह अपने दोषों, दुर्गणों के प्रति एक गहरा लगाव रखता है। सत्योपदेश व धर्म चर्चा सुन–समझकर अपने जीवन को सुधारने के लिए जब वह प्रयास करने लगता है और मन–मस्तिष्क में पड़े दोषों–दुर्गुणों के कूड़े–कबाड़ को निकाल फेंकना चाहता है तो वह किन्हीं अज्ञात कारणों से स्वयं को कमजोर या असहाय पाता है। सच्चे मन–मस्तिष्क से सद्ग्रन्थों का सतत् स्वाध्याय करने और धार्मिक विद्वानों की सेवा और संगति से मनुष्य को वह प्रबल आत्म बल और प्रखर आत्म तेज मिलता है कि जीवन सुधार की आन्तरिक तैयारी के समय वह कमजोर और असहाय नहीं पड़ता। आत्मोन्नति के शाश्वत सिद्धान्तों की सरल सटीक व्याख्या करते तथा पढ़ते–सुनते हुए सबको आत्म कल्याण की भावना को मुखर रखना चाहिए। पंच महायज्ञों का प्रतिदिन अनुष्ठान करना–कराना हमारे जीवित–जागृत होने का प्रमाण है, हमारे जीवन को सर्वविध सुख– समृद्धि से भरने वाले है। मनु का एक अनमोल विधान देखिए–

''**विघसाशी भवेत् नित्यं, नित्यं वाऽमृत भोजनः।**
विघसो भुक्तशेषं तु, यज्ञशेषं तथाऽमृतम्।।''
(मनु. 3.285)

अर्थात् गृहस्थी या तो विघस भोजन करे या अमृत। अतिथि मित्र–परिवार के बाद खाया भोजन विघस कहाता है तथा यज्ञ शेष अमृत। युधिष्ठिर का उत्तर भी यही संकेत दे रहा है। सुधी पाठक शास्त्र वचन का सम्मान करेंगे।।

आर्य समाज श्री गंगानगर
राजस्थान
सम्पर्क–07597894991

☞ पृष्ठ 03 का शेष

बोलना सिखाया जिन्होंने...

कुछ दिन बाहर तीर्थाटन कर आएँ। जब लौटकर आयेंगे, तो तीन दिन में ही यह सब बिगड़े काम बन जायेंगे, और सम्बन्ध स्नेहपूर्ण सामान्य हो जायेंगे। शायद प्रभु भी यही चाहते हों। माताजी जो सुस्त–सुस्त आयी थीं, मस्त–चुस्त मुस्कराती चली गयीं।

ओ३म् कहो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्व वि राजति।। (ऋक् 1/3/12)

इस मन्त्र के अनुसार ज्ञान देवी सरस्वती की उपासना से ज्ञान के महासागर का आभास मिलता है। जो माता सरस्वती के ज्ञान–ध्वज के नीचे आ जाते हैं, वे अपनी सब बुद्धियों को विशेषतया दीप्त करके जिस–जिस वस्तु की गहराई में जाना चाहते हैं, उस–उस वस्तु के तत्वबोध को प्राप्त कर लेते हैं। गहराई में उतरने वालों को सब कुछ मिल जाता है, और किनारें बैठे रहने वाले इधर–उधर ताकते रह जाते हैं, कहा भी है–

सरस्वती के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
खर्चे से घटती नहीं, बिन खर्चे घटि जात।।

शून्य से शिखर पर पहुँचने वाले व्यक्तियों की सन्तानें उनकी प्रतिष्ठा को तो देखती हैं, उनकी त्याग–तपस्या–श्रम व पुरुषार्थ को नहीं देख पातीं। सन्तानों की अभिलाषा रहती है कि वे भी प्रतिष्ठा पाएँ, परन्तु अपने बल पर नहीं, पूर्वजों की प्रतिष्ठा के बल पर। उदाहरण स्वरूप – एक कथानक प्रस्तुत है–

पर्वतीय क्षेत्र से एक किशोर प्रयाग आया। श्रम–साधना एवं सद्भावना से प्रयाग विश्वविद्यालय में उच्च से उच्चतर शिक्षा प्राप्त की। अपनी मेधा के श्रेय स्वरूप उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष बना और सेवा–निवृत्त हो गया। इस लम्बे अन्तराल में उसके शिष्यों की श्रृंखलाएँ बढ़ती गयीं और परिवार की पीढ़ियाँ भी बढ़ती गयीं। महानगर में शिक्षा, सांस्कृतिक व सामाजिक क्षेत्रों में वयोवृद्ध प्राध्यापक की अकूत मान्यता होने लगी। इस मध्य हुआ यह कि उनके पौत्र की उपस्थिति कम होने के कारण परीक्षा में बैठने से रोक दिया। पौत्र व घर वालों ने जोर लगाकर देख लिया, पर उसको परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं मिली। थककर–घर वालों ने प्रतिष्ठित पितामह से अनुशंसा करने को कहा, उन्होंने भी अनसुनी कर दी। घरवालों ने उनसे बोलना बंद कर दिया। अन्ततः प्राध्यापक पितामह पौत्र को लेकर विश्वविद्यालय के तत्संबंधी विभाग में जा पहुँचे। तेजस्वी विभागाध्यक्ष अपने उच्चासन से उठे और वयोवृद्ध प्राध्यापक के चरण–स्पर्श करके अपने आसन पर बैठाया। स्वागत करते हुए वे बोल पड़े प्रोफेसर सर! आज मैं जो कुछ हूँ, आपके कारण हूँ। उस समय उपस्थिति कम होने पर आप मुझे परीक्षा में बैठने से रोकते नहीं, तो मैं विशद तैयारी नहीं करता, शीर्ष स्थान न पाता और आज विभागाध्यक्ष न होता। वर्तमान विभागाध्यक्ष ने उनके आने का कारण पूछा। उन्होंने कोई अनुशंसा नहीं की। इधर से निकल रहा था, सोचा मिलता चलूँ। अच्छा अब चलता हूँ । पौत्र ने घर आकर सारी बात बतायी। घर वालों को समझा कर संतुष्ट कर दिया, आगे की तैयारी के लिए स्वयं को पुष्ट कर लिया। वयोवृद्ध प्राध्यापक से सबके प्रणाम चल निकले और पौत्र का सुनिश्चय उत्कृष्ट हो गया। उसका भी भविष्य समुज्ज्वल हो गया।

'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्र)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ (उ.प्र.)

क्रांति वीर सुखदेव

● पं. रामदेव शर्मा

मि. हयूम के मानस पुत्र नेशनल कांग्रेस देश की आजादी के बाद से ही रट लगाये हुए हैं देश गांधी बाबा के असहयोग आन्दोलन व अहिंसा के मार्ग पर चल कर स्वतंत्र हुआ। मगर यह वास्तविक तथ्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो भारत के अभिन्न अंग कश्मीर में खूब आन्दोलन व असहयोग वहाँ के मुस्लिम लोग कर रहे हैं क्या भारत सरकार कश्मीर को आजाद कर देगी? इसी प्रकार नेहरू त्रुटिपूर्ण रवैये (नीति) के कारण भारत के अभिन्न अंग पाक अधिकृत कश्मीर में आन्दोलन हो रहे हैं। बिना युद्ध के पी.ओ.के. को पाक आजाद कर देगा?

भारत की आजादी के निमित्त बलिदानियों की लम्बी श्रृंखला की कड़ी में एक वीर बलिदानी जिनका नाम इतिहास में सुखदेव के नाम से प्रसिद्ध है, की जयन्ती के अवसर पर हम हृदय के अन्तःस्तल से नमन करते हुए श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

विश्व के सभी प्राणियों को स्वतंत्रता (आजादी) अति प्रिय है, चाहे मनुष्य हो, पशु–पक्षी या जलचर हों जब भी उनकी स्वतंत्रता छिनी तो आजादी पाने के लिए संघर्षरत रहते हैं और यदि स्वाभिमानी पुरुष है तो वह आजादी पाने के लिए तन, मन,धन यहाँ तक अपना सर्वस्व न्योछावर कर देश के लिए बलिदान देने में भी पीछे नहीं रहते। ऐसे ही एक विचित्र क्रांतिकारी पंजाब प्रांत के लायलपुर नामक स्थान पर पंद्रह मई सन् 1907 में (दुर्भाग्य से जो अब पाकिस्तान में है) जन्में। सुखदेव के जन्म के मात्र 3 माह के पूर्व ही पिता श्री राम लाल का देहान्त हो गया। उनके लालन पालन का बोझ उनकी माँ पर आ पड़ा। विधवा माँ धार्मिक प्रवृत्ति की कुशल महिला थीं जो आर्यसमाज के प्रति पूर्ण समर्पित होने के कारण शिशु सुखदेव में धैर्य, निष्ठा और आध्यात्मिक आस्था के अंकुर बोती रहती थी। आर्य समाज वातावरण में पले बढ़े सुखदेव में परिवार के गुण तो आये ही साथ में निडरता और साहस का अटूट संगम भी दृष्टिगोचर होने लगा।

प्रारंभिक शिक्षा धनपतमल आर्य स्कूल में प्रारंभ हुई, हाई स्कूल की परीक्षा के लिए सनातन धर्म हाई स्कूल में भर्ती हो प्रवेशिका परीक्षा सन् 1922 में द्वितीय श्रेणी में पास की।

सुखदेव जब केवल बारह वर्ष के थे तब उनके चाचा जो गल्ला व्यवसाई थे, जिनका सहयोग भतीजे को आवश्यकतानुसार मिलता रहता था। उनको सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण गिरफ्तार कर लिया गया। सुखदेव तब समझे भारत पर विदेशियों का शासन है जो उनका अधिकार नहीं है, गोरों से देश को छुड़ाना जितनी शीघ्रता हो उतना ही अच्छा है।

बालक का हृदय गोरों के प्रति घृणा से भर गया और मन ही मन अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल कर माँ भारती को स्वतंत्र कराने का प्रण कर लिया। जब वे कक्षा 9 के विद्यार्थी थे तब ब्रिटिश सरकार ने आदेश निकाला कि विद्यालय के समस्त छात्र–छात्राएँ एक स्थान पर एकत्रित हो ब्रिटिश झण्डे को नित्यप्रति अभिवादन करेंगे। उन्होंने अभिवादन का बहिष्कार किया व अन्य छात्र/छात्राओं से कराया और सारी कहानी अपने चाचा को जा सुनाई। चाचा ने सुखदेव की निडरता और साहस की प्रशंसा करते हुए समझाया कि ऐसी ही लगन और जागरुकता देशभक्त बनने की सीढ़ी है। मुझे मेरे भतीजे पर गर्व है। खूब पीठ थप–थपाई। सुखदेव जब नेशनल कॉलेज लाहौर में अध्ययनरत थे तभी देश में स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बज रहा था। जगह–जगह आन्दोलन हो रहे थे। जुलूस और सभाएँ हो रही थी, ऐसे में सुखदेव कैसे शांत रह सकते थे। इसी दर्म्यान सुखदेव का संपर्क वीर सरदार भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा, राजगुरु आदि से हुआ। उन्हीं दिनों सन् 1921 में गांधी बाबा ने भी असहयोग आन्दोलन विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार कर होली जलाना, स्वदेशी को धारण करना आन्दोलन चरम पर था। उक्त सभी नौजवान बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे। आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था, नौजवानों के जत्थे बढ़ते जा रहे थे। बाबा को अपना नेतृत्व संकट में जान पड़ा उन्होंने आन्दोलन वापिस ले लिया, नौजवानों को बड़ी निराशा हुई और असहयोग अहिंसक आन्दोलन के नारे से नया खून निराश हो गया। अहिंसा द्वारा अंग्रेजों को भारत से निकालने की बार असंभव लगने लगी। अतः वीर शिरोमणी चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा आदि ने लाहौर में नौजवान भारत सभा की स्थापना की, जिसमें सुखदेव सक्रिय सदस्य हुए।

नौजवान भारत सभा एक ऐसा खुला मंच था जो अपने विचारों योजनाओं से जनता में रूढ़िवादिता, कुत्सित अंध विश्वास एवं समाज में फैली बुराइयों को दूर कर अंग्रेजों के नापाक इरादों का पर्दा फाश कर अपना प्रमुख लक्ष्य देश को आजाद करने के लिए जनता में राष्ट्रियभाव जागृत करना था। इस कार्य के लिए समय असमय आना जाना पड़ता था। अधिकांश कार्य रात्रिवेला में होते थे अतः कॉलेज का होस्टल वार्डन सुखदेव को शंकालु दृष्टि से देखने लगा, पूछताछ करने लगा। सुखदेव को लक्ष्य प्राप्ति में रूकावट महसूस हुई अतः स्वच्छन्दता पूर्ण कार्य करने हेतु उन्होंने होस्टल छोड़ दिया।

सुखदेव अपनी मर्जी के धुनी हरफनमौला प्रवृत्ति के युवक थे। मन में एक दिन विचार आया कि क्रांतिकारियों को बलिष्ठ एवं सहनशील होना अत्यंत आवश्यक है। परीक्षण करना चाहिए, एक दिन मार्ग में खड़े सिपाहियों के गाल पर कस कर चांटा जड़ दिया। अन्य सिपाहियों ने अपने घेरे में लेकर तबियत से मरम्मत करना शुरु कर दी, मार पड़ती रही मुंह से उफ तक नहीं निकला, घायल अवस्था में वापिस लौटने पर अपनी कहानी भगत सिंह को सुना दी, भगत सिंह ने प्रश्न किया कि जब किसी सिपाही ने तुम्हें छेड़ा ही नहीं तो अनावश्यक पंगा लेने की क्या जरूरत थी, कहीं पागल कुत्ते ने तो नहीं काटा था? निश्छल मुस्कान भरी मुद्रा में आहत स्थलों पर सेंक देते हुए मौन साध लिया, फिर बोले ऐसा कुछ नहीं था, फिर क्या पहाड़ टूट पड़ा था आखिर कोई तो कारण होगा? 'अजमाइश अभ्यास कि क्रांतिकारी कितनी कष्टप्रद यातनाएँ सहन कर सकता है। मैं केवल यह चाहता था कि सुखदेव कितनी मार खाकर मुख नहीं खोल सकता है। हर परीक्षण कुछ न कुछ देता ही है। सो थोड़ा साहस भी जुटा कि मार खाने में पीछे नहीं हूँ।

ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को मूर्ख बनाने के लिए भारत में सरकारी प्रशासन सुधार हेतु एक साइमन कमीशन भेजा उसके विरोध हेतु एकान्त कमरे में काले झण्डे तैयार किए जा रहे थे कि पुलिस को सुराग लग गया और पुलिस ने छापा मारा, उस समय 5–6 क्रांतिकारी तो भाग निकले पर सुखदेव पकड़े गए। पुलिस खुश, चलो एक तो पकड़ा गया। इसी से सब भेद खुलवा लेंगे! घंटो नाना प्रकार की यातना देने के बाद भी पुलिस सुखदेव से काई जानकारी हासिल नहीं कर सकी। सुखदेव ने यह सिद्ध कर दिया कि क्रांतिकारी मर तो सकता है पर झुक नहीं सकता। क्रांतिकारी फौलादी होते हैं।

लाला लाजपत राय ने साइमन कमीशन के विरोध में जुलूस का नेतृत्व किया, उन पर लाठियों से भीषण प्रहार हुआ परिणामस्वरूप दूसरे दिन उनका देहांत हो गया। इस दुर्घटना से क्रांतिकारी चुप नहीं बैठ सके, क्योंकि लाला जी की मृत्यु को राष्ट्रीय अपमान समझा। खून के बदले खून की योजना बनाई, ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते थे। भगत सिंह व राजगुरु, सुखदेव ने पुलिस अधिकारी सान्डर्स की गोली मार कर हत्या कर दी। पुलिस पीछे पड़ गयी, सरदार भगत सिंह ने अपनी दाढ़ी मूछ मुंडवा दी और हैट, टाई में दोनों सुशोभित हो लाहौर से इस्लामाबाद तक सुरक्षित पहुँच गए। कुछ दिन शांति से रह कर सान्डर्स हत्या के बाद कोई बड़ा धमाका कर अंग्रेजों की नींद उड़ाने के लिये दल के सदस्यों में सुखदेव ने चर्चा चलाई और असैम्बली भवन पर बम फेंकने की योजना बनाई। इस योजना को चन्द्रशेखर आजाद से अनुमति मिल गयी। 8 अप्रैल 1929 को असैम्बली भवन में बम विस्फोट कर पर्चे बाँटते हुए पकड़े गये। मुकदमा चला 7 अक्टूबर 1930 को स. भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी की सजा दे दी गयी। परिणामस्वरूप पूरे देश में इन सपूतों की रिहायी के लिए सभाएँ, धरने, मशालों की जुलूस निकाले, जनता ने तो अपना पुरजोर विरोध सरकार के सम्मुख प्रकट किया किंतु गांधी बाबा व उनके अनुयायी कांग्रेसी इस विषय पर चुप ही रहे। अन्ततः 23 मार्च सन 1931 को लाहौर की केन्द्रीय जेल में सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव ने वन्दे मातरम का जय घोष करते हुए फाँसी के फन्दे को चूमा। इन तीनों क्रातिवीरों को शतशत नमन करते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

आर्य समाज भीम गंज मण्डी,
कोटा जं. मो. न. 9460676545

फल की चिन्ता

● नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

चिंता मनुष्य को दीमक की तरह अंदर से खोखला कर देती है। चिंता बी.पी. शुगर जैसी बीमारियों को जन्म देकर मनुष्य को चिता की ओर धकेल देती है। चिंता और चिता में केवल एक बिन्दु का फासला है। लेकिन फिर भी मनुष्य सदैव अपने कर्म फलों की चिन्ता में दुःखी रहता है। हर व्यक्ति स्वतंत्र कर्ता के रुप में किसी भी कार्य को करने ना करने वा अन्यथा किसी अन्य प्रकार से करने के लिए स्वतंत्र होने के कारण अपने द्वारा संपादित हर कर्म का कर्ता, और कर्ता होने के कारण ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में उसके फल का भोक्ता होता है। हर मनुष्य अपने द्वारा किए गए दुष्कर्मों को भलीभाँति जानता है और यह भी मानता है कि उसके दुष्कर्मों का फल ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में दंड स्वरुप किसी विपत्ति कष्ट के रुप में अवश्य मिलेगा। हम सभी **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्''** के सिद्धान्त से परिचित हैं। यह हमारे लिए संभावित फलों की चिन्ता का एक प्रमुख कारण है।

चिंता का दूसरा कारण उस फल की चिन्ता है जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं बिना पुरुषार्थ किए वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की चिंता हमें बहुत सताती है। चिंता करने से लक्ष्य की दूरी और अधिक बढ़ जाती है। कर्म करने से मनुष्य उतना नहीं थकता जितना उस कर्म को करने वा फल की प्राप्ति की चिंता से थक जाता है। सीधे सरल शब्दों में चिंता हमारे कार्य करने की ऊर्जा को क्षीण कर देती है और चिंता में परेशान बिना कार्य को प्रारम्भ किए ही हतोत्साहित होकर थक कर बैठ जाता है। अब प्रश्न उठते हैं–

1. क्या बिना फल की कामना के कर्म संभव है?
2. क्या फल की चिंता करनी चाहिए?
3. फल की चिंता ना करें तो क्या करें?

योगेश्वर कृष्ण ने तो विवाद में फँसे अर्जुन को गीता का संदेश देते हुए निष्काम भाव से किए गए परोपकार के यज्ञीय कार्यों को सर्वश्रेष्ठ कर्मो की श्रेणी में रखा। यह ठीक है कि फल की कामना मनुष्य को कर्म करने के लिए प्रेरित करती है लेकिन बिना कर्म किए फल की कामना चिन्ता का मुख्य कारण बनती है। और ऐसे कर्म साधारणतया मनुष्य के स्वयं के स्वार्थ के वशीभूत होते हैं। वैसे भी **'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन'** कहकर योगेश्वर कृष्ण ने मनुष्य द्वारा कर्ता के रुप में कर्म करने पर तो अधिकार बताया है। परन्तु फल की प्राप्ति के लिए कर्म का कर्ता ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के ही आधीन है। अतः जब फल देना हमारे अधिकार क्षेत्र की बात नहीं है तो उस कर्म को ना करके अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर की चिन्ता किसी भी व्यक्ति को उसके लक्ष्य तक कैसे ले जा सकती है। जैसे एक परीक्षार्थी के लिए परीक्षा की विषयवस्तु का ज्ञान लेना, पढना और परीक्षा देना तो उसके अधिकार में आता है परन्तु परीक्षाफल तो परीक्षक के अधिकार की बात है। फल की व्यर्थ चिंता तो हमें उस बंदर की तरह बना देती है जो रोजाना आम की गुठली को खोद कर देखता है कि पेड़ बना या आम लगा या नहीं। इस प्रकार वह उसे अंकुरित भी नहीं होने देता। हमारे कर्म तो बीज की तरह है जिन्हें हम खेत में पुरुषार्थ का हल चलाकर बो देते हैं और फिर अपनी ओर से कर्म करते हुए खाद पानी दवा से तैयार करते हैं लेकिन हमारे कर्मों के फलों की फसल तो समय आने से तैयार होती है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि यदि हमने बबूल के बीज बोए हैं तो आम की फसल कभी नहीं होगी। अर्थात जैसे कर्म करेगा वैसा फल देगा भगवान। फल की चिन्ता में हमारी हालत वैसी ही हो जाती है जैसे हम गाड़ी में साथ के सामान का बोझ नीचे रखकर उस पर बैठने के स्थान पर बोझों को सिर पर उठाकर बैठे हों। न्याय व्यवस्था में हमारे कर्मों का फल देना ईश्वर पर छोड़ देना ही उचित है। हमें तो केवल अपने अधिकार क्षेत्र अर्थात अपने द्वारा संपादित होने वाले कर्मों का चिन्तन मनन करना चाहिए। क्योंकि यदि कर्मों की दिशा यानि चलने का रास्ता उलटा होगा तो हम अपने लक्ष्य से दूर होते चले जाएँगे। वैसे भी स्वार्थ के वशीभूत किए गए कर्मों के फल की चिन्ता हमें उन कर्मों में लिप्त कर देती है और वह कर्म हमारे बंधन का कारण बनते हैं। जैसे यदि एक मधुमक्खी पराग चुनकर बनाए उस मधु का स्वाद लेने के लिए उसमें लिप्त हो जाए तो उसी शहद मे फँस कर मर जाती है।

अब अन्त में प्रश्न आता है कि हम फल की चिन्ता ना करें तो क्या करें इसका सीधा सरल उत्तर है कि हम मनुष्यों को अपने अधिकार क्षेत्र अर्थात स्वतंत्रकर्ता के रुप में केवल अपने कर्म के संपादन से पूर्व उसका चिन्तन मनन करना चाहिए और निष्काम भाव से यज्ञीय वा परोपकार के सर्वहितकारी कार्यों को करते हुए फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था पर पूर्ण आस्था रखते हुए उसकी चिंता उसी पर छोड़ देनी चाहिए।

602 जी एच 53
सैक्टर 20 पंचकूला
09467608 6866
9878748899

जीवन–संदेश

● डॉ. महेश विद्यालंकार

सृष्टि का उत्पादक, पालक, रक्षक, संहारक और कर्मफल प्रदाता परमेश्वर को माना जाता है। संसार में जीव उसी की व्यवस्था से आता, मरता, जीता तथा जाता है। उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, अनन्त अदृश्य सत्ता के समक्ष सभी रुकते, झुकते, डरते एवं उसे मानने के लिए मजबूर होते हैं। ज्ञानी, धनी, मानी, बलवान सभी को देर–सबेर परमात्मा की न्याय व्यवस्था, भोगचक्र, कर्मफल, शासन आदि के सामने लाचार होकर नतमस्तक होना पड़ता है। सत्य तो यह है कि परमेश्वर अपने अस्तित्व, सत्ता, व्यवस्था और नियमों को हमसे रगड़–रगड़कर मनवा लेता है। हम दुनिया की कोर्ट–कचहरी से बच भी जाए, मगर आत्मा व परमात्मा की कचहरी से कोई नहीं बच सकते हैं। डरो! उसकी मार में आवाज नहीं होती है। दिन–रात असंख्य योनियों में पड़े रोग–शोक, दुख–पीड़ा, अभाव, कष्ट के रुप में कर्मफल भोग रहे जीवों को देखकर हमको समझ और संभल जाना चाहिए। जगत में कोई सुपर सत्ता है, जिसके अनुशासन व कन्ट्रोल में हमारी जीवन यात्रा चल रही है।

जीवन एक सफर है, यहाँ कोई अमर होकर नहीं आता है। यह यात्रा कहाँ से शुरु तथा कहाँ खत्म होगी, किसी को पता नहीं है। जीव संसार में अकेला और कर्मानुसार आता है व जाना भी अकेला ही पड़ता है। विचित्र रहस्य है–जीव को स्वयं नहीं मालूम है, मैं पूर्व कहाँ से आया हूँ और अगला मेरा कहाँ ठिकाना होगा। मेरे आने का प्रयोजन व लक्ष्य क्या है। आम आदमी बेहोशी, नशे व पागलपन में जिन्दगी निकाल जाता है, जब जीवन खत्म हो जाता है तब उसे जीने का ढंग, समझ एवम् सलीका आता है। फिर वह पछताता, रोता–पीटता और बेचैन होता है। फिर पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत। ठहरो! सोचो। समझो। कुछ करो। यह जीवन बड़ी तेजी से निकला जा रहा है। खुली आँख की दुनियाँ है, आँख बन्द होने के बाद यहाँ कुछ नहीं बचता है।

अनेक जन्मों के पुण्य कर्मो के बाद जीव को मानवयोनि पाने का सौभाग्य मिलता है। यह नर तन प्रभु की अनमोल देन और वरदान है। तुलसीदास ने कहा है–

बड़े भाग मानुष तन पावा,
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थहि गावा।

सृष्टि का सर्वोतम प्राणी मानव ही है। परमात्मा के बाद मनुष्य ही सृष्टि का नियामक, व्यवस्थापक एवं संचालक है। वेद कहता है– मनुर्भव –मनुष्य जब सच्चे अर्थ में आदमी बनेगा तभी सच्चे अर्थ में संसार में प्रेम, एकता, भाईचारा व इन्सानियत आएगी। वेद में कहा है– **उद्यानं ते पुरुष नावयानम्** ! ओ मानव! तुझे ऊपर उठना और देवत्व को पाना है। इन्सानियत से नीचे गिरा तो शैतान बन जाएगा। यह मानव जीवन की लाटरी अनेक जन्मों के बाद निकलती है। इस जीवन यात्रा की पूर्णता धर्म–अर्थ, काम, मोक्ष में मानी गई है। इस लोक में भी सुन्दरता, सफलता और पूर्णता से जीना और रहना है। इसी जीवन में धर्मार्थ, परमार्थ तथा अगले जीवन के लिए भी सोचना है। इसी जीवन में अगले जीवन की अग्रिम बुकिंग है। अधिकांश लोगों की सोच–समझ व भागदौड़ – कमाओ, खाओ पीओ और मौज करो बाद में मर जाओ, तक सीमित हो रही है। सन्तों एवं शास्त्रों ने सच ही कहा है–

रात गंवाई सोयकर, दिवस गँवायो खाय,
हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाय।

वह दुर्लभ कीमती जीवन बातों–बातों में तेजी से निकला जा रहा है। मृत्यु हम सबका लगातार तेजी से पीछा कर रही है। हम आँख बन्द किए बेखबर हो रहे हैं। बदलती हुई दुनियाँ, जिन्दगी, उम्र, रिश्ते, शरीर, मृत्यु आदि से हम कुछ सीख नहीं पा रहे हैं। असली परमात्मा से हम दूर होते जा रहे हैं। नकली देवी–देवताओं, गुरुजी, महन्तों आदि को ही परमेश्वर मानने लगे हैं। जितना हम सच्चे प्रभु से दूर होते जायेंगे उतने दुःखी अशान्त, असन्तुष्ट, बेचैन व परेशान रहेंगे। प्रभु को स्मरण करना और धन्यवाद करना हम सबका परम कर्तव्य है। जब हम संसार में आए थे, तब हमारे पास क्या था? आज क्या नहीं है? उसने हमें सब कुछ दिया, हमने उसका धन्यवाद भी नहीं किया। इससे बढ़कर कृतध्नता, पाप व अपराध और कोई नहीं होगा। ज्यों–ज्यों उम्र बढ़ती जाये त्यों–त्यों मनुष्य को शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता और भगवद् भक्ति की ओर बढ़ते जाना चाहिए। हमारी अन्तिम लाईफ लाइन सत्संग, मन्दिर व ईश्वर भक्ति की मानी गई है। पूजा, प्रार्थना, भक्ति, सत्संग, यज्ञ, कथा आदि ये मनुष्य को ही करने तथा सम्मिलित होने का वरदान है। पशु–पक्षी, कीट आदि ये कार्य नहीं कर सकते हैं। मनुष्य जीवन की सफलता, सुन्दरता, सार्थकता व महत्व इसी में है– जीवन हमारा धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, आदर्श पूर्ण तथा प्रेरक बने। हम अपना जीवन भी सुन्दर सफलता व उद्देश्य पूर्ण जीयें और दूसरों के लिए भी सहयोगी व उपयोगी बनें।

न हर भूलो और न जग भूलो, भागो नहीं जागो।

जीवन में सर्वत्र फूल बिखेरो, काँटे न बोओ, न फैलाओ। दुनियाँ में सबसे बड़ा सुख माना गया है।, दूसरों के काम आओ, दूसरों के लिए जीओ। जीवन को प्रेम–प्रीति से मिलजुलकर व एक दूसरे के काम आओ, दूसरों के लिए जीओ। जीवन को प्रेम–प्रीति से मिलजुलकर व एक दूसरे के सहयोगी बनकर गुजारो। अन्त में–

प्रभु को न बिसारिए, हिम्मत न हारिए,
हँसते मुस्कुराते हुए, जिन्दगी गुजारिए।
भरोसा कर तू प्रभु का, तुझे धोखा नहीं होगा,
ये जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा।

बी.जे. – 29 पूर्वी,
शालीमार बाग, दिल्ली

हनुमान बन्दर नहीं थे

● डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

दूरदर्शन पर महात्मा श्री राम के जीवन चरित्र पर अनेक निर्देशकों ने धारावाहिक एवं चल चित्रों को प्रस्तुत किया है। यह कार्य अत्यन्त सराहनीय व प्रशंसनीय रहा क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम व श्री कृष्ण भारतीयों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं प्रत्येक भारतीय इन महापुरुषों को प्रातः सायं याद करता है।

कथानकों में विचारणीय विषय भी हैं जहाँ एक बिन्दु यह भी है कि हनुमान जी, सुग्रीव व उनकी सेना को बड़ी–बड़ी गोल लम्बी व झूमती हुई पूँछ के साथ दिखाया जाता है इस पर हमें विचार करना चाहिए क्या किष्किन्धा पर्वत पर रहने वालो के सभी लोगो के पूँछ थीं, अनेक निर्देशक हुए हैं। राम चरित मानस, वाल्मीकीय रामायण, कम्ब रामायण, राधेश्याम की रामायण पढ़ी और कथानक बना दिया। उसमें ऐसे दृश्य भी दर्शाए जिनसे दर्शकों का मनोरंजन भी हो जाए और उनका कार्य निष्फल भी न हो। नाटकों का मंचन करने से पूर्व इतिहास की गम्भीरता को देखते हुए सत्यता का भी विचार करना चाहिए कि इन वानर जाति के मनुष्यों को और विशेषतः हनुमान जी को बार–बार उछल कूद करने वाले बन्दर के रूप में क्यों प्रस्तुत किया जाता है? यदि पूँछ न दिखाएँ तो क्या जनता इन कथानकों व नाटकों को सम्मान नहीं देगी। ऐसी बात नहीं है हमें कुछ विषयों पर विचार भी करना चाहिए।

प्रथम तो विचार करने वाला विषय है कि चल चित्र व सीरियल (धारावाहिक) निर्माता किष्किन्धा पर्वत पर जाएँ शाकुम्भरी से लेकर लेह लद्दाख तक हिमालय पर जाएँ जिस स्थान पर ऋष्य मूक पर्वत के समीप पम्पा के पास सुग्रीव घूमते हुए श्री राम व लक्ष्मण को मिले थे यहाँ ही मतङ्ग मुनि का आश्रम था वहाँ आज भी ग्राम व नगर होंगे वहाँ स्त्री पुरुष व बच्चे भी होंगे क्या किसी के पूँछ दिखायी पडती है? यही नहीं धरती पर इतनी जनसंख्या में किसी को मनुष्यों में पूँछ हो तो बताएँ कि मनुष्यों को उस समय पूँछ थी यदि उस समय पर पूँछ थी तो आज क्यों गायब हो गयी। यदि हनुमान के पूँछ थी तो अन्यों को भी पूँछ होनी चाहिए थी। सत्य बात तो यह है कि हनुमान के पूँछ नहीं थी और न ही वे बन्दर थे वे मनुष्य ही थे उनकी माता अन्जनी मनुष्य जाति की धर्म परायण वेद वेत्ता स्त्री थी जिन्होंने संस्कारों द्वारा एक ब्रह्मचारी तेजस्वी वेदों के विद्वान् संस्कृत व व्याकरण में निपुण धर्म ध्वजी वीर पुरुष हनुमान को जन्म दिया। वह बन्दर कैसे हो सकती है और क्या कभी किसी पुरुष से बन्दर पैदा हो सकता है? या बन्दर से पुरुष (मनुष्य) पैदा हो सकता है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य से मनुष्य ही पैदा होगा, घोड़े से घोड़ा, गाय से बछड़े व बछिया को ही जन्म देगी, गेहूँ से गेहूँ अन्न ही होगा, गन्ने से गन्ना ही होगा और जौ से जौ ही होगा क्योंकि यह सृष्टि का नियम है। हनुमान जी भी मनुष्य जाति के थे उनके माता पिता भी मनुष्य ही थे उनके पूँछ नहीं थी न ही वह बन्दर थे। मनुष्य ही थे। एक और उदाहरण दे सकते हैं कि क्या कोई बन्दर वेदों का जानकार हो सकता है? क्या कोई बन्दर शब्दों का उच्चारण कर सकता है? क्या कोई बन्दर मनुष्यों के साथ सद्व्यवहार वाली भाषा, बोल–चाल आदि कर सकता है? संस्कृत में प्रवाह युक्त वार्तालाप कर सकता है? इन सबका उत्तर नहीं में होगा। हनुमान बन्दर नहीं थे न ही उनके पूँछ थी क्योंकि भले ही कुछ पुस्तकों में पूँछ लिखी भी हो तो यह बात सृष्टि के नियम के विरुद्ध है क्योंकि बन्दर व मनुष्य में बहुत बड़ा भेद है। बन्दर मनुष्य की भाँति भाषा व्याकरण नहीं बोल सकता न ही इतनी बुद्धि व विवेक पूर्ण कार्य कर सकता है।

हनुमान जी का जीवन परिचय देखें तो हम पायेंगे कि हनुमान बलवीर्य वान, शौर्यवाले विद्वान् महान पुरुष थे। हमने इतने ज्ञानवान मनुष्य को बन्दर बना कर रख दिया। वह जब श्री राम व लक्ष्मण से ऋष्यमूक पर्वत के पास जा कर परिचय प्राप्त करते है तो कहते हैं–

ततश्च हनुमान वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीत वदुपागम्य राघवौ प्राणिपत्य च।।
आवभाषे च तौ वीरौ यथावत प्रशंस च।
सम्पूज्य विधिवद् वीरौ हनुमान वानरोत्तमः।।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्य पराक्रमौ।
राजर्षि देव प्रतिमौ तापसौ संशित व्रतौ।।

–वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड

तदनन्तर हनुमान ने विनीत भाव से उन दोनों रघुवंशी वीरों के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाली मधुर वाणी में उनके साथ वार्तालाप आरम्भ किया। वानर शिरोमणि हनुमान ने पहले तो उन दोनों वीरों की यथोचित प्रशंसा की फिर विधिवत् उनका सम्मान करके स्वच्छन्द रूप से मधुर वाणी में कहा–"वीरों आप दोनों सत्य पराक्रमी, राजर्षियों और देवताओं के समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रत का पालन करने वाले जान पड़ते हैं।"

जब हनुमान दोनों की प्रशंसा कर रहे थे तो दोनों भाई चुप–चाप खड़े सुन रहे हैं परन्तु बोलते नहीं, इस पर हनुमान पुनः हाथ जोड़ कर कहते हैं–

एवं मा परि भाषन्तं कस्माद वै नाभिभाषतः
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद वानर पुङ्गवः
वीरो विनिक्रतो भ्रात्रा जगद भ्रमति दुःखितः

–किष्किन्धा काण्ड

'वीरो में' इस तरह बारंबार आपका परिचय पूछ रहा हूँ आप लोग मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? यहाँ सुग्रीव नामक एक श्रेष्ठ वानर रहते हैं जो बड़े धर्मात्मा व वीर हैं। उनके भाई बाली ने उन्हें घर से निकाल दिया है इसलिए वे अत्यन्त दुःखी होकर सारे जगत् में मारे–मारे फिरते हैं।

इस प्रकार हनुमान श्री राम व लक्ष्मण से विनय करते हुए कह रहे हैं इस प्रकार का बुद्धि विवेक पूर्ण सद् व्यवहार कोई श्रेष्ठ व विद्वान् पुरुष ही तो कर सकता है हनुमान निस्सन्देह मनुष्य जाति के विद्वान् पुरुष थे और वानर इसलिए कहा है कि यह जाति वनों में रहती थी, वनों में विचरण करती थी इनके आश्रम महल राजमहल व घर भी थे मनुष्य ही घर महल व राजमहल बना कर रह सकता है।

हनुमान फिर भी कहते हैं

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
राज्ञावानर मुख्यानां हनुमान नाम वानरः।।

–किष्किन्धा काण्ड

उन्हीं वानर शिरोमाणियों के राजा महात्मा सुग्रीव के भेजने से मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान है। मैं भी वानर जाति का हूँ। हनुमान अपने आपको सुग्रीव की भाँति वानर जाति का ही बताते हैं क्योंकि वहाँ घने वन थे, पर्वतीय स्थान थे, जहाँ रहने वाले मनुष्य वानर जाति के कहे जाते थे रावण भी रक्ष जाति का था परन्तु मनुष्य था वेदों का विद्वान् था इसमें कोई सन्देह नहीं।

और आगे देखिए, जब हनुमान श्री राम से परिचय प्राप्त कर लेते हैं तो लक्ष्मण की ओर पूछने के लिए देखते हैं तो राम लक्ष्मण को सचेत करते हुए कहते हैं कि

नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः
ना सामवेद विदुषः शक्य मेव विभाषितुम्।।

–किष्किन्धा काण्ड

जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता।

श्री राम लक्ष्मण को हनुमान के विषय में यही बताते हैं कि वह हनुमान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के अच्छे ज्ञाता थे तभी तो इतनी सरल संयत भाव से व्याकरण युक्त भाषा का प्रयोग कर रहे थे।

हनुमान को बन्दर दर्शाना एक दम असत्य है बन्दर कभी शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकता जब कि हनुमान वेदों के मर्मज्ञ थे। बन्दर बता कर हमने इतने महान विद्वान् का उपहास किया है और हनुमान की पूँछ दिखा कर केवल मनोरंजन का पात्र बनाया है जहाँ हनुमान रहते थे उनके वंशज आज भी होंगे। उसी समय राम अयोध्या के निवासी थे आज भी राम के वंशजों को देखें तथा सुग्रीव व हनुमान के परिवारों के वंशजों को देखें सभी साधारण मनुष्य ही मिलेंगे पूँछ किसी भी व्यक्ति के नहीं होगी और न ही मनुष्य के पूँछ होती है। फिर भी श्री राम हनुमान का परिचय कराते हुए कह रहे हैं–

नूनं व्याकरणं क्रत्स्नमनेन बहुधाश्रुतम।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।

–किष्किन्धा काण्ड

'निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है क्योंकि बहुत सी बातें बोले जाने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली' हनुमान जी के विषय में रामायण का अध्ययन करने से यही विदित होता है कि वह अत्यन्त बलवान, वेद के विद्वान् व श्रेष्ठाचारी पुरुष थे। राम कहते हैं कि सम्भाषण के समय हनुमान के नेत्र ललाट, मुख, भौंह तथा अन्य अङ्गों से कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ।

हनुमान जी का जीवन–चरित्र देखें तो यही मिलेगा। वे [illegible] शिरोमणि विद्वान् पुरुष थे, महावीर थे, ब्रह्मचारी थे, मनुष्य थे।

हमें अपने महापुरुषों के प्रति श्रद्धा तो होनी चाहिए परन्तु अन्ध–श्रद्धा नहीं जिसमें उन्हें कुछ का कुछ ही मान बैठें मेरी बात न माने तो रामायण का, राम के चरित्र का, हनुमान के जीवन–चरित्र का सम्यक अध्ययन करके देख सकते हैं कि इतने विवेक पूर्ण निर्णय, विद्या युक्त कर्म, धीर–गम्भीर विषयों पर विचार कोई मनुष्य ही कर सकता है जिसने श्री राम का पूरा सहयोग दिया वह ज्ञानवान विद्वान् महावीर हनुमान असाधारण मनुष्य थे, बन्दर नहीं थे।

अनेक व्यक्ति उनको स्वप्न में यदि बन्दर दिखायी दे जाए तो प्रातः होते ही सड़कों पर खड़े हो कर बन्दरों को गुड़ चना खिलाते देखे जाते हैं वे समझते हैं

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ पृष्ठ 02 का शेष

आनन्द गायत्री कथा

इस प्रकार सोचते हुए वे निराश व उदास बने सड़क पर खड़े थे कि जेहलम की ओर से एक मोटर आती हुई दिखाई दी। मोटर के स्वामी लाला त्रिलोकचन्द के मित्र थे; मोटर में वे स्वयं बैठे थे; गुजरात जा रहे थे। लाला त्रिलोकचन्द को देखकर उन्होंने मोटर खड़ी कर ली। त्रिलोकचन्द से पूछा– 'इतने उदास क्यों हो?' उन्होंने सारी बात कह सुनाई और यह भी बताया कि जलालपुर में उनका पहुँचना आवश्यक है। मित्र ने कहा– 'इसमें घबराने की क्या बात है? लारी चली गई तो जाने दो, यह मोटर तो है। बैठो इसमें, मैं तुम्हें लेकर चलता हूँ।' किन्तु मोटर में बैठकर वे खारियाँ से छः मील की दूरी पर ही पहुँचे थे कि एक भयानक दृश्य उनके सामने आ गया। एक लारी सड़क के दाईं और उल्टी पड़ी थी। दस यात्री मर गए थे। लारी चकनाचूर हो गई थी, वृक्ष टूट गया था। और यही वही लारी थी जो लाला त्रिलोकचन्द को लिए बिना चली आई थी; जिसके न मिलने के कारण लाला त्रिलोकचन्द उदास और निराश हुए थे। उसी समय उन्होंने भगवान् का धन्यवाद किया और हाथ जोड़कर कहा– 'धन्य हो भगवन्! तूने बचा लिया मुझे।'

अरे! मत समझो कि सब–कुछ तुम्हीं जानते हो। तुसमे अधिक ज्ञानी वह प्रभु है। उसकी आँख बड़ी है, तुम्हारी छोटी। जहाँ तक वह देखता है, वहाँ तक कभी तुम नहीं देख पाते। इसलिए वह उस पर भरोसा करो। वेद में मन्त्र आता है जिसका भाव यह है–

'हे अग्निदेव! ले चल मुझे सीधे रास्ते से! ले चल उधर जिधर तू चाहता है।'

गीता में भगवान् कृष्ण ने भी इस विचार को प्रकट करते हुए कहा, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' अर्थात् सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ। यह बात गायत्री में भी कही गई– 'हे भगवन्, तुझे वरता हूँ।' अपने–आपको तेरे अर्पण करता हूँ। इसी को 'शरणागति' कहते हैं। यही नारद की 'अनन्य–भक्ति थी। इसी को 'योग–शास्त्र में 'ईश्वर–प्रणिधान– अपने–आपको ईश्वर के अर्पण कर देना कहा। इसी को महर्षि दयानन्द 'उपासना कहते हैं।

इसका तात्पर्य इसके बिना और कुछ नहीं तेरे सामने बिक गया हूँ, मैं तेरा हो गया हूँ। आपने कई बार विवाह–संस्कार में पढ़े जाने वाले मन्त्र सुने होंगे। विवाह देखा होगा। हमारे पंडित जगतराम जी ने सम्भवतः, सहस्रों में विवाह कराए होंगे।

(पण्डित जगतराम आर्यसमाज अनारकली के पुरोहित थे, आजकल आर्यसमाज सीताराम बाजार, दिल्ली के पुरोहित हैं। स्वामीजी के सामने ही बैठे थे। स्वामीजी ने कहा कि उन्होंने सहस्रों विवाह कराए हैं, तो पास बैठे हुए सभी हँस उठे। स्वामीजी ने हँसते हुए कहा–

"अपने नहीं, दूसरों के विवाह कराए हैं इन्होंने। स्वयं बेचारे विधुर हो बैठे हैं।" इस पर कितने ही लोग ऊँचे स्वर में हँस पड़े और स्वामी जी कहते रहे–)

पण्डित जगतराम जी आपको बता सकते हैं कि विवाह के मण्डप में पवित्र अग्नि के सामने कन्या वर को सम्बोधित करके कहती है–'आज से मैं तेरे पास बिक गई। आज से मैं तेरी हुई।' और वर भी कन्या को सम्बोधित करके कहते है– 'आज से मैं तेरे पास बिक गया। आज से मैं तेरा हुआ।' यह है गायत्री के इस 'वरेण्यम्' शब्द का अर्थ। अपने–आपको भगवान् के अर्पण कर दो, बिक जाओ, उसके सामने सिर झुका दो और कहो–

'सरे–तसलीम खम है जो मिजाते–यार में आए।

अब सुनिए यह 'भर्गः' क्या है? यह शब्द जो गायत्री के दूसरे भाग में वर्तमान है 'गोपथ ब्राह्मण' में इस शब्द की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। ब्राह्मण–ग्रन्थ वेद के मन्त्रों के रहस्य को खोलने वाले हैं। 'गोपथ ब्राह्मण' में गायत्री के सम्बन्ध में ऐसी–ऐसी भेद की बातें प्रकट की गई हैं कि इन्हें देखकर आश्चर्य होता है। 'भर्गः' शब्द के दस अर्थ इस ब्राह्मण–ग्रन्थ में लिखे हैं– जिससे बड़ा कोई न हो; 'भर्गः' अन्न को भी कहते हैं, पाप का नाश करनेवाला भी, भुना हुआ, पका हुआ भी, पृथिवी, अग्नि, वस्तु, वसन्त– इस प्रकार दस नाम गिनाए हैं और कहा कि ये सब 'भर्गः' है। पृथिवी के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं होता। पृथिवी न हो तो हम चलें कहाँ? खड़े कहाँ हों? अन्न कहाँ से हो? और अन्न न हो तो जिएँ कैसे? पृथिवी की इस विशेषता का अनुभव करके ही इसे 'भर्गः' कहा गया है। वसन्त ऋतुओं का राजा है इसलिए इसे 'भर्गः' कहा गया है। वसन्त को आदि ऋतु भी कहते हैं। मनुष्य इस पृथिवी पर जब पहले–पहल जागा तो उसके चारों ओर वसन्त ऋतु थी। चारों और फूल खिले हुए थे। पिघली हुई बर्फ से नीले–नीले निर्झर गिर रहे थे। नदियाँ संगीत के साथ बह रहीं थीं। आम्रमँजरी पर कोयल कुहू–कुहू कि मधुर ध्वनि कर रही थी। प्रकृति आनन्द–विभोर हो नाच रही थी। आकाश में विद्युत् और मेघ नाच रहे थे। इस सुन्दर ऋतुराज में संसार का प्रथम मनुष्य जाग उठा। तब से वसन्त सबसे उत्तम श्रेष्ठ भी है इसीलिए वह भी 'गर्भः' का अर्थ है सबसे अच्छा, जिससे अच्छा कोई न हो।

परन्तु 'भर्गः' शब्द के कुछ और भी अर्थ हैं– जीवन प्रदान करनेवाला, पका देने वाला। इन अर्थों पर विचार करना चाहिए। गायत्री का जाप करता हुआ उपासक जब 'भर्गः' शब्द पर पहुँचे, तब उसे अनुभव करना चाहिए कि वह सविता देव की उस शक्ति में प्रवेश कर रहा है जो सबसे महान् है, आनन्द देने वाली है, पापों को जला देनेवाली है। उसे विचारना चाहिए कि उसके पापों को मल जल रहा है। महर्षि दयानन्द ने 'भर्गः' शब्द के अर्थ यह लिखे हैं– "जो उपद्रव–रहित, पका हुआ, परामर्थ साधन स्वरूप है, वह 'भर्गः' है।" कवि कहता है–

जब ही नाम हृदय धर्‌यो,
भयो पाप का नाश।
जैसे चिनगी आग की,
परी पुरानी घास।

नाम को हृदय में धारण करने पाप का नाश होता है अवश्य। इस प्रकार जल उठते हैं वे, जैसे पुरानी घास जल उठती है। ठीक भावना के साथ जाप करना चाहिए। किन्तु देखो, कवि ने 'हृदय धर्‌यो' कहा है। चित्त में धारण करने की बात कही है। होंठ धर्‌यो, ज़ुबान धर्‌यो, कण्ठ धर्‌यो नहीं कहा। केवल होंठो से जाप करते रहने से ही कुछ नहीं होता।

(स्वामीजी कहते रहे–)

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
और मणिराम....................................?

(स्वामीजी ने हँसते हुए कहा– 'मणिराम कनॉट प्लेस में फिरे।' तो सब लोग हँस उठे।)

माला तो कर में फिरे,
जीभ फिरे मुख माहिं।
और मणिराम चहुँ दिश फिरे,
यह तो सिमरण नाहिं।।

नहीं, इस प्रकार तो स्मरण नहीं होता। मेरी माँ! इस प्रकार स्मरण और जाप नहीं होता। जाप होता है उस समय, जब माला, होंठ, जिह्वा, कण्ठ, चित्त और मन एक–साथ फिरें। इस प्राकर जो जाप करते हुए 'भर्गः' कहता है, उसके सभी पाप जलकर राख हो जाते हैं। आनन्द और सुख का एक संसार उसके लिए जाग उठता है। इससे अधिक 'भर्गः' और क्या करें?

क्रमशः....

☞ पृष्ठ 08 का शेष

हनुमान बन्दर नहीं थे...

हनुमान ने उन्हें दर्शन दिए है हालांकि जीवों को खिलाने में कोई आपत्ति नहीं। बलिवैश्व देव यज्ञ में पशु आदि को भोजन कराना, उनका संरक्षण करना बताया है परन्तु यदि बन्दरों को यह मान कर ब्रैड खिलाएँ जाएँ कि यह हनुमान है या हनुमान के वंशज है एक दम अनुचित बात है, अज्ञानता है व मूर्खता पूर्ण मानसिकता का परिचायक है। क्या हनुमान ने इतने बुरे कार्य किए थे कि उनको पशु का जन्म मिला? जो पेड़–पौधों घर मकानों पर भागे फिरते है? ऐसी हमारी सोच अन्धविश्वास पूर्ण है अनेक व्यक्ति मंगलवार का व्रत रखते हैं परन्तु हनुमान जी के आदर्शों का पालन नहीं करते, उनके जीवन से प्रेरणा नहीं लेते वह वेदों के विद्वान् थे तो उनके व्रत रखने वालों को भी वेद पढ़ने–पढ़ाने चाहिए यह तो करते नहीं अपितु इसका उल्टा कार्य करते हैं वह भी बागों में जाकर बन्दरों को गुड़ चना खिलाने चल पड़ते हैं क्योंकि उनके मन में भी यही धारणा है कि हनुमान के वंशज बन्दर हैं कम से कम हिन्दुओं को यह असत्य व अनुचित धारणा मन से दूर करनी चाहिए। महापुरुषों का सम्मान न कर सकें व उनके चरित्र को न समझ उनके सिद्धान्तों का आचरण भी न कर सकें तो उन्हें इस प्रकार से अपमानित भी न करें। इतने बड़े महान विद्वान् को बन्दर मानना उनको पूँछ लगी दिखाना उनका अपमान ही है, या तो हम लोग यह मूर्खता कर रहे हैं या कहीं इतिहास में ऐसे प्रक्षिप्त विषय मिला दिए गए जिन्हें हम बिना सोचे समझे वैसा ही मानते चले आ रहे है। सत्य क्या है, असत्य क्या है इस विवेक का प्रयोग नहीं कर रहे। यही हाल मूर्ति पूजा का है, यही बात श्री कृष्ण पर लागू होती है पुराणों में श्री कृष्ण को दही व माखन चोर, स्त्रियों के साथ रासलीला रचाने वाला, नदी में स्नान करने वाली गोपियों के वस्त्र उठा ले जाने वाला, कुब्जा दासी के साथ संसर्ग (सहवास) करने वाला बता दिया है होली पर तो कृष्ण को मनोरंजनार्थ एक तमाशा बना दिया जाता है ऐसे अश्लील गीतों की रचना कर दी है जो बेहद भद्दी व फूहड़ है। क्या यही हमारी संस्कृति है कि अपने महान पुरुषों को, पूर्वजों को, उपहास का पात्र बनाएँ हमें इतिहास में से ऐसी कुटिल अन्याय पूर्ण अश्लील व असत्य धारणाओं को निकाल कर शोधन करना चाहिए। अन्धानुकरण न कर सत्य को ही माना जाए। रामायण महाभारत हमारे इतिहास हैं उनका हमें सम्मान करना चाहिए।

चन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा
मो. 08979794715

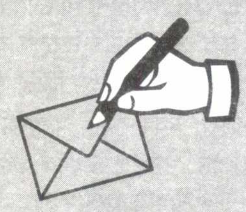

पत्र/कविता

जिस आंगन में गाय है वहाँ मौज ही मौज

गैया को मैया कहा, रहा कसाई मार।
नहीं चुकाई दूध की कीमत तो धिक्कार।।
उबली नारों की नदी उठा लिया नभ शीश।
गोमाता कटती रही बेच दिया आशीष।।
गोकरुणानिधि को पढ़ा जगा आत्म सम्मान।
दूध पिया फिर छोड़ दी ओ कृतघ्न इन्सान।।
बिना गाय के पंगु है पूरा आयुर्वेद।
जिस थाली में खा रहे करो न उसमें छेद।।
दूध–दही की बह चुकी नदियाँ मेरे देश।
बिना गाय के घूमती बदियाँ फिरें विशेष।।
या तो माँ बोलो नहीं या दृढ़ स्वर से बोल।
जितने भी हैं गो वधिक सबके सिर दो खोल।।
हम कट जायेंगे भले नहीं कटेगी गाय।
ऐसा लो संकल्प तब फिर न लगेगी हाय।।
दूध नहीं है गाय का ऋत अमृत की खान।
कहा बीरबल ने सही चेत मूर्ख नादान।।
जिस आँगन में गाय है वहाँ मौज ही मौज।
गाय देखकर भागती दुःख दैन्य की फौज।।
गाय मरे तो हम मरे मूरख जीना सीख।
जीने के अधिकार की मांगे मिले न भीख।।

सारस्वत मोहन मनीषी
सम्पर्क: –9810835335

एक पुजारी होने पर भी मुझे अब चिल्लाना पड़ रहा है

अत्यंत निर्भीक सत्यवादी ऋषि दयानंद अपने सुख्यात, खोजपूर्ण, तार्किक व ऐतिहासिक–धार्मिक–क्रांतिकारी पुस्तक–"सत्यार्थ प्रकाश" में पहले ही कह चुके हैं कि भारत में जब से मूर्तिपूजन का टोटका (टोना, टोटरम) शुरू हुआ है, तभी से भारतवासी हम–आर्यों का चौमुखी पतन होने लग गया। और यह तब तक होता ही रहेगा जब तक भारत या मूर्तिपूजा मिट नहीं जाता! अब हमें चुनना है कि भारत देश को बचायें या मूर्तिपूजा को।

देश बचा रहेगा तो मूर्तिपूजा का शौक तमाशा पुनः हो सकेगा। किंतु देश मिटा तो मूर्तिपूजा का फिर सवाल ही नहीं उठता। आखिर हम मूर्तिपूजा के पीछे इतने क्यों पड़ने लग गये हैं कि प्रतिदिन देश के करोड़ों रुपये और करोड़ों घंटे बर्बाद करने में जरा भी नहीं हिचकते?

चूँकि मूर्तिपूजा का यह टोटका शुरु–शुरु में बौद्धों की गीद्ध–दृष्टि से बच्चों (निराकारोपासक भोले–भोले जन समान्य आर्यों) को बचाने हेतु ही रचा गया था। किंतु कोई भी झूठ जब बार–बार बोला जाता है, तब कुछ दिन बाद खुद बोलने वाला भी उस झूठ को सत्य ही समझ बैठता है। जैसे–एक जालसाज व्यक्ति बेहद ग्रामीण इलाके में चला गया और अपने को सरकारी अधिकारी बता–बता कर गाँव वालों से सप्रेम टैक्स वसूलने लगा, कुछ वर्षों बाद एक सही प्रशासनिक अधिकारी उस गाँव को देखने–जांचने आये, तो वह धूर्त उस अधिकारी का इस तरह विरोध करने लगा, मानो यही सच्चा अधिकारी हो।

ताज्जुब की बात कि सारे गाँव वाले भी यह कहते हुए इसी धूर्त का साथ देने लगे कि इन्हें वे वर्षों से जानता हैं। जबकि नवागंतुक के पक्ष में कोई–कोई ही वृद्ध–शिक्षित जन अपनी सहमति दे रहे थे। अंततः अपने को अपमानित होता देख वह अधिकारी राजधानी में लौट आया और पुनः पुलिसजनों–अधिकारियों को लेकर उस गाँव में गया। तब भी उसी तरह अड़ा वह दुस्साहसी खुद को पुस्तैनी–शोषणाधिकारी ही बता रहा था। राजा द्वारा उसे बंदी बना लिया गया तब भी वह न्याय की ही दुहाई दे रहा था।

विधर्मी लोग मूर्तिपूजा से जितना नफरत करते हैं, हम लोग उतना ही अधिक छोटे–बड़े मंदिरों–मूर्तियों को गली–गली में बना–बना कर उन्हें और चिढ़ाने में लगे हैं। जैसे किसी को गाली देने पर अपनी ही जुबान की शिष्टता गंदी होती है या पड़ोसी को तंग करने हेतु अपने किवाड़ को पीटते रहने में अपना ही नुकसान है। उसी तरह मूर्तिपूजा के नव–कुप्रचलन से देश और धर्म का इतना अधिक नाश है कि एक पुजारी होकर भी मुझे ही अब चिल्लाना भी पड़ रहा है।

दो हज़ार वर्षीय मूर्तिपूजा–प्रथा का झूठ आज भारत की सनातन वैदिक ऐतिहासिक सच्चाई से लड़ने को तत्पर है। मान्य पाठक! आप किधर खड़े होंगे?

आर्य प्रहलाद गिरि
निंगा, आसनसोल (प.बं.)
मो. 973513260

****

यदि वीर सावरकर की सोच पर नहीं चले तो...

वीर सावरकर के दिखाए गए मार्ग पर न चलने के कारण खण्डित भारत की वही दशा हो गई है जो 1947 में अखिण्डत भारत की थी। देश को विभाजित कराने का मूल उद्देश्य ही पूरा नहीं हुआ क्योंकि साम्प्रदायिक दंगे निरन्तर जारी हैं। मुस्लिम–ईसाई दंगे आरम्भ करते हैं क्योंकि उनकी सोच आक्रामक है और निहत्था हिन्दू बचावकारी बन जाता है क्योंकि वह शस्त्र हीन है और लड़ना जानता ही नहीं है। देश के नेता तुष्टीकरण की होड़ में लगे रहते हैं और हिन्दू की डटकर उपेक्षा व अवहेलना करते हैं क्योंकि हिन्दू संगठित नहीं है। उसका वोट बैंक भी नहीं है।

जिन्ना ने 1947 में आबादी की अदला बदली का बहुत अच्छा सुझाव दिया था जिसे नेहरु–गांधी ने अस्वीकार कर दिया। वीर सावरकर इसके पक्ष में थे। मुस्लिमों को वोट का अधिकार नहीं देने की राय वीर सावरकर ने दी थी जिससे नेहरु सहमत नहीं हुए। गांधी जी ने शोर मचाना शुरु कर दिया कि खण्डित भारत केवल हिन्दुओं का नहीं है बल्कि सबका है। पारसी–यहूदी–कादियानी–सूफी तथा नास्तिक भी यहाँ रहते हैं। उन्होंने इसे खिचड़ी देश बना दिया। जिसे और कहीं जगह न मिले तो उसे यहाँ जगह मिल जाएगी। यदि वीर सावरकर की बात मानकर खण्डित भारत में केवल हिन्दुओं को वोट का अधिकार दिया जाता तो सारे मुस्लिमों को पाकिस्तान और बांग्लादेश जाने के लिए बाध्य कर दिया जाता और ईसाई मिशनरियों को भारत से चले जाने से मना नहीं किया होता तो हिन्दुओं का प्रतिशत 98 हो गया होता।

यदि हिन्दु महासभा मजबूत होती और स्वतन्त्र भारत में उसकी सरकार बनती तो निश्चित रुप से राम राज्य आ जाता और हिन्दू के चेहरों पर खुशी व मुस्कान होती। देश का नाम हिन्दुस्तान रखा जाता। हिन्दू धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया जाता। हिन्दू को ही वोट का अधिकार होता। केवल हिन्दु पर्वों पर ही सरकारी अवकाश होता। आरक्षण का आधार आर्थिक होता। गऊ को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाता। गोदूध को राष्ट्रीय पेय घोषित किया जाता। देसी गायों और सांड़ों के पालन को बढ़ावा दिया जाता। वन्देमातरम् को राष्ट्रीय गान बनाया जाता। देश का ध्वज 100 फीसदी केसरिया होता। विद्यालयों में धर्म शिक्षा अनिवार्य रखी जाती। डिग्री कॉलेजो में सह शिक्षा नहीं होती। 106 वर्षों के लम्बे पराधीनता काल में 3032 मन्दिरों को मस्जिदों में बदल दिया गया था। इन सब मन्दिरों की पुर्नवापसी और जीर्णोद्धार की जिम्मेदारी भारत सरकार की होती।

अल्पसंख्यक–धर्मनिरेक्षक– तुष्टीकरण– अलगाववाद– आंतकवाद जैसे हानिकारक शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया जाता। यदि हिन्दु सावरकरवादी नहीं बना और हिन्दू महासभा मजबूत नहीं हुई तो हिन्दू का अस्तित्व ही खतरे में दिखाई दे रहा है। अतः भाईयो, स्वार्थी नेताओं की पार्टियों से बचो और वीर सावरकर के स्वप्नों को साकार करने के लिए, हिन्दू महासभा को मजबूत करो।

इन्द्र देव
18/186, टीचर्स कॉलोनी बुलन्दशहर

****

बी.बी.के डी.ए.वी. कॉलेज अमृतसर का साइकलिंग में शानदार प्रदर्शन

बी.के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर की रोड साइकलिंग खिलाड़ियों ने गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर में आयोजित हुई 'जी.एन.डी.यू. इंटर कॉलेज रोड साइकलिंग चैम्पियनशिप' जीती।

एक विज्ञप्ति के अनुसार कॉलेज की दो खिलाड़ियों सुश्री इलेंगबेम चौबा देवी और कोमल अजय देशमुख ने जी.एन.डी.यू. अमृतसर में आयोजित 'ऑल इण्डिया इंटरवर्सिटी रोड साइकलिंग चैम्पियनशिप' में स्वर्ण पदक एवं कॉस्य पदक जीते। सुश्री इलेंगबेम चौबा देवी और आशू ने अलीगढ़ में आयोजित हुई सीनि. नैशनल रोड साइकलिंग में रजत पदक व कॉस्य पदक जीते।

प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने इन युवा विजेताओं को बधाई दी और भविष्य में बढ़िया प्रदर्शन करने हेतु प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि नारी सशक्तिकरण का महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सरोकार था, महाविद्यालय पूर्ण कर रहा है।

प्रो. डॉ. आर.के. महाजन, डीन, कॉलेज डिव्लपमेंट काउँसिल, जी.एन.डी.यू, अमृतसर, कैप्टन आई.एस.धामी, सहायक निर्देशक, यूथ सर्विसिज़, पंजाब, श्री सुदर्शन कपूर, अध्यक्ष, स्थानीय प्रबंधकर्त्री समिति ने भी खिलाड़ियों को शुभकामनाएँ दीं।

पं. जगदीश चन्द्र ''वसु'' जी ''स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्तण्ड आर्यभिक्षु पुरस्कार'' से सम्मानित

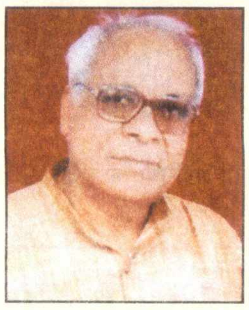

आर्य समाज एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के सच्चे अनुयायी एवं वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार हेतु आजीवन समर्पित मान्य श्री पं. जगदीश चन्द्र वसु जी को "माता लीलावती आर्य भिक्षु, परोपकारिणी न्यास" आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार द्वारा सम्मानित किया गया। यह सम्मान उन्हें आर्य समाज तथा वेद–प्रचार के कार्यों के लिए दिया गया। पं. वसु जी सन् 1959 से निरन्तर महर्षि दयानन्द के विश्व कल्याणकारी मिशन वेद प्रचार एवं प्रसार के कार्यों में सर्वात्मना समर्पित होकर लगे हुए हैं। उन्होंने युवावस्था में प्रतिज्ञा की थी कि सरकारी नौकरी नहीं करेंगे और वैदिक–सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार में लगकर उपदेशक कार्य करेंगे तथा आजीवन लगे भी रहेंगे।

आप सार्वदेशिक आर्य वीर दल, नई दिल्ली के प्रधान शिक्षक रहे और हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश आदि में असंख्य युवाओं को आर्य समाज से जोड़ा। आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा, पंजाब एवं महाराष्ट्र में महोपदेशक के पद पर रहते हुए प्रचार कार्य किया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली एवं उपसभा हरयाणा में सहायक तथा वेद प्रचार अधिष्ठाता के पद पर लगभग 25 वर्ष तक प्रचार कार्य किया।

वसु जी ने लगभग 30 पुस्तकों का लेखन भी किया है। आप सम्पूर्ण भारतवर्ष के भिन्न–भिन्न प्रान्तों में घूम कर प्रचार–प्रसार का कार्य करते रहे है। आपने देसराज कालोनी, पानीपत, में 7 फरवरी सन् 1987 को आर्य समाज की स्थापना भी की जहाँ प्रतिवर्ष 'वेद प्रचार सप्ताह' एवं वार्षिक महोत्सव 'बड़ी धूमधाम' के साथ मनाया जाता है। आपके लेख आर्य जगत् की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

"स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्तण्ड आर्य भिक्षु सम्मान" केवल वसु जी का सम्मान व अभिनन्दन नहीं है अपितु सम्पूर्ण आर्य जगत् का है, महर्षि के कल्याणकारी सिद्धान्तों का है।

डी.ए.वी. रोहतक में महात्मा हंसराज जयन्ती समारोह का आयोजन

''समर्पण के बिना इतिहास रचा नहीं जा सकता, तप के द्वारा कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना सरल से सम्भव है। संघर्ष से मनुष्य का व्यक्तित्व गौरव और गरिमा प्राप्त होता है।" ये शब्द डी.ए.वी. के प्रधानाचार्य श्री शैलेष सिंघल जी ने महात्मा हंसराज की पावन जयन्ती पर आयोजित समारोह में अपने स्वागत भाषण में कहे। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में आगे कहा युवा हंसराज ने निःशुल्क डी.ए.वी. की सेवा का संकल्प लेकर न केवल इस आन्दोलन की नींव को मजबूत किया बल्कि इसकी दिशा और दशा भी तय कर दी। पावन जयन्ती समारोह का आयोजन हम उन मूल्यों के लिए मूल्यों के लिए स्वयं को पुनः समर्पित करने के लिए करते हैं जो हमारी विरासत है।

उन्होंने अपने सम्बोधन में आगे कहा देश भर के डी.ए.वी. संस्थानों में श्रेष्ठ संस्कारों द्वारा श्रेष्ठ संस्कारों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों का निर्माण किया जाता है। डी.ए.वी. में शिक्षित–प्रशिक्षित विद्यार्थी अपने श्रेष्ठ सकारात्मक योगदान के द्वारा दुनिया में अपनी एक अलग छवि प्रस्तुत करते हैं। महात्मा हंसराज ने अपने समर्पण द्वारा जो उच्च मानवीय मूल्य स्थापित किए थे, उन्हीं की नींव पर स्थापित डी.ए.वी. संस्थान मानवता का ध्वज उठाए आगे खड़े दिखाई देते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अपनी गतिविधियों से राष्ट्रव्यापी डी.ए.वी. संस्थान राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इस समारोह में विद्यालय के लगभग 3000 से ज्यादा विद्यार्थियों ने भाग लिया। इस अवसर पर महात्मा हंसराज के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित, भजन, भाषण, कविताओं की अध्यापकों एवं छात्रों ने प्रस्तुति दी।

☞ *पृष्ठ 01 का शेष*

डिस्लेक्सिया का पूर्ण...

देखभाल करके, बच्चे को अपना अधिक समय देकर, उसके अन्य कौशलों और प्रतिभाओं को उभारने का प्रयत्न करके तथा भावनात्मक सहयोग से *डिस्लेक्सिया* का पूर्ण प्रबंधन संभव है।

कार्यशाला में शिक्षिकों के लिए कुछ खेल और क्रियाकलाप भी रखे गये जिसके माध्यम से मनोरंजन के साथ–साथ बच्चों के विकास में सहयोगी क्रियाओं को समझा जा सके। विद्यालय के समस्त शिक्षक–शिक्षिकागण इस कार्यक्रम का हिस्सा बन लाभान्वित हुए। कार्यक्रम के अंत में प्राचार्य श्री पालीवाल ने कहा कि इस तरह के कार्यक्रमों से हमें जो नई बातें सीखने को मिलती हैं, उनका उपयोग हम अपने शिक्षण क्षेत्र में करते हुए शिक्षण को और प्रभावशाली बना सकते है। साथ–ही उन्होंने *डिस्लेक्सिया* से पीड़ित बच्चे को पहचान करने और उस पर विशेष ध्यान देते हुए उसके विकास हेतु प्रयत्न करने की सलाह भी दी।

कार्यक्रम की संयोजिका भुवनेश्वरी जायसवाल ने प्राचार्य महोदय एवं सभी शिक्षकों जिनका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए मिला, उन सभी का अभार व्यक्त किया।

Registration No. R.N.I. 39/57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 10/11-05-2017

महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल पंचकूला ने मनायी जयन्ती

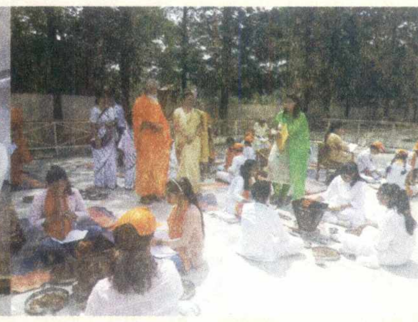

आर्य युवा समाज महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल सैक्टर–6, पंचकूला (हरियाणा) के तत्त्वावधान में महात्मा हंसराज जी के 153वें पावन दिवस के उपलक्ष्य में विभिन्न प्रतियोगिताओं में देवयज्ञ, भाषण, कलाकृति, कविता पाठ, वैदिक प्रश्नोत्तरी और फैंसी ड्रैस प्रतियोगिता हुई। इस पावन अवसर पर विद्यालय को ओ३म् ध्वज, रंगोली आदि से सुसज्जित किया गया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ देवयज्ञ हवन से हुआ। आर्य जगत् के युवा संन्यासी, वीतराग स्वामी विदेह योगी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा), इस कार्यक्रम के ब्रह्मा थे। श्रीमान् हंसराज गन्धार जी, श्री रमेश चन्द्रजीवन दोनों सपत्नीक तथा डॉ. श्रीकृष्ण सिंह आर्य मुख्य यजमान ने आसन पर विराजमान होकर शोभा बढ़ाई। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता के रूप में श्रीमान हंसराज गन्धार जी थे, उन्होंने अपने उद्बोधन में उपस्थित श्रोताओं को आशावान् के साथ–साथ मानवता के सद्गणों से भरपूर रहने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा डी.ए.वी. संस्था के सलाहकार के विचार सुनकर सभी लोगों ने ज्ञान के अथाह सागर की भूरि–भूरि प्रशंसा की। स्वामी दयानन्द की स्मृति में जीवन समर्पित करने वाले व्यक्तियों में पहला स्थान महात्मा हंसराज जी का है।

आशीर्वाद के रूप में पूज्यपाद स्वामी विदेह योगी ने कहा कि मन के दास मत बनो बल्कि मन को नौकर बनाकर रखो। निरन्तर पुरुषार्थ ही सच्चा धर्म है। दुनिया में वे लोग ही कायम होते हैं जो मेहनत व लगन के साथ कार्य करते हैं।

अन्त में आर्य युवा समाज की संरक्षिका जया भारद्वाज ने शहर के गणमान्य प्रतिष्ठित आर्यजनों के साथ ही विभिन्न विद्यालयों से आए सहयोगी प्राचार्याओं व प्रतिभागियों का हृदय से धन्यवाद तथा आभार प्रकट किया। इस कार्यक्रम में लगभग 450 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

हंसराज महिला महाविद्यालय का शिष्ट मण्डल राष्ट्रपति से मिला

उत्तर भारत के प्रतिष्ठित संस्थान हंसराज महिला महाविद्यालय के इतिहास में एक और स्वर्णिमपल जुड़ गया है। हंसराज महिला महाविद्यालय की छात्राओं ने कॉलेज प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) अजय सरीन के नेतृत्व में भारत के राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणब मुखर्जी से मुलाकात की, जहाँ उनका स्वागत राष्ट्रपति के अतिथि के तौर पर हुआ। माननीय राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी को प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) अजय सरीन ने कॉलेज की फाइन आर्टस् की छात्राओं द्वारा तैयार की गई पेंटिंग भेंट की, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

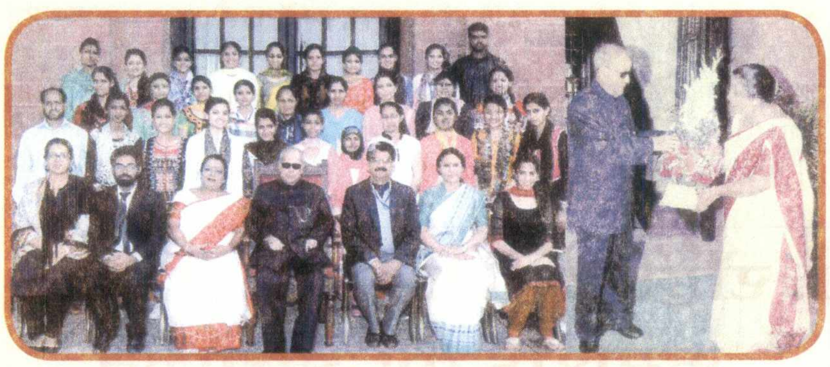

माननीय राष्ट्रपति ने छात्राओं से कहा ''वेलकम टू राष्ट्रपति भवन''। राष्ट्रपति महोदय ने छात्राओं से मिलने पर उन्हें डी. ए. वी. प्रबन्धकृत्री समिति के शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे योगदान की भूरि–भूरि प्रशंसा की। छात्राओं ने दरबार हाल को देखा जहाँ डी.ए.वी. प्रबन्धकृत्री समिति के प्रधान माननीय श्री पूनम सूरी जी को पदमश्री से नवाजा छात्राओं का स्वागत बतौर राष्ट्रपति के अतिथि के रूप में हुआ। राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने छात्राओं को पूरा राष्ट्रपति भवन घुमाने का निर्देश भी दिया। छात्राओं को अशोका हाल, दरबार हाल, पुस्तकालय, मार्बल हाउस, प्रदर्शनी कक्ष, कांफ्रेस रूम शामिल थे। राष्ट्रपति भवन का मुख्य आर्कषण मुगल गार्डन रहा, जिसे विशेष रूप से एचएमवी की छात्राओं के लिए खोला गया तथा पूरे गार्डन का भ्रमण करवाया गया।

राजनीति शास्त्र विभाग के डॉ. राजीव कुमार व मास कम्यूनीकेशन विभाग की श्रीमती रमा शर्मा भी छात्राओं के साथ थे। राष्ट्रपति महोदय के आफिशियल फेसबुक पेज व वेबसाइट पर भी एच एम वी का चित्र राष्ट्रपति भवन के पब्लिक रिलेशन्स आफिस द्वारा अपलोड किया गया है।

डी.ए.वी. पिहोवा में हुई अन्तर्विद्यालयी वाद-विवाद प्रतियोगिता

डी.ए.वी. स्कूल पिहोवा में अन्तर्विद्यालयीय वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। अंग्रेज़ी में हुई इस वाद–विवाद प्रतियोगिता का विषय था "क्या सोशल नेटवर्किंग साइट्स वास्तव में सोशल है? कार्यक्रम की अध्यक्षता कुमारी सलोनी गुप्ता (सिविल जज कुरुक्षेत्र) ने की। वाद–विवाद प्रतियोगिता में निर्णायक की भूमिका डिपार्टमेंट ऑफ लॉ, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के श्री नीरज कुमार व मॉस कम्युनिकेशन विभाग के श्री अशोक शर्मा जी ने निभाई।

इस प्रतियोगिता के विषय में जानकारी देते हुए स्कूल के प्रधानाचार्य श्री एन.सी. बिन्सल जी ने बताया की यह एक ज्वलंत विषय है, जिस पर छात्रों के विचार जानना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए डी.ए.वी. स्कूल कुरुक्षेत्र, चीका, पिहोवा, पानीपत, हिसार, अम्बाला, करनाल, शाहबाद, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल पंचकूला, डी.ए.वी. पुलिस पब्लिक स्कूल मधुबन सहित लगभग 13 टीमें पहुँचीं। प्रतियोगिता का ख़िताब अरुणा माकन डी.ए.वी. पुलिस पब्लिक स्कूल, अम्बाला, व अपूर्वा व अनन्या डी.ए.वी. स्कूल, पानीपत, ने जीता। इस अवसर पर स्कूल स्टाफ सहित अन्य गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**